अन्तर की ओर

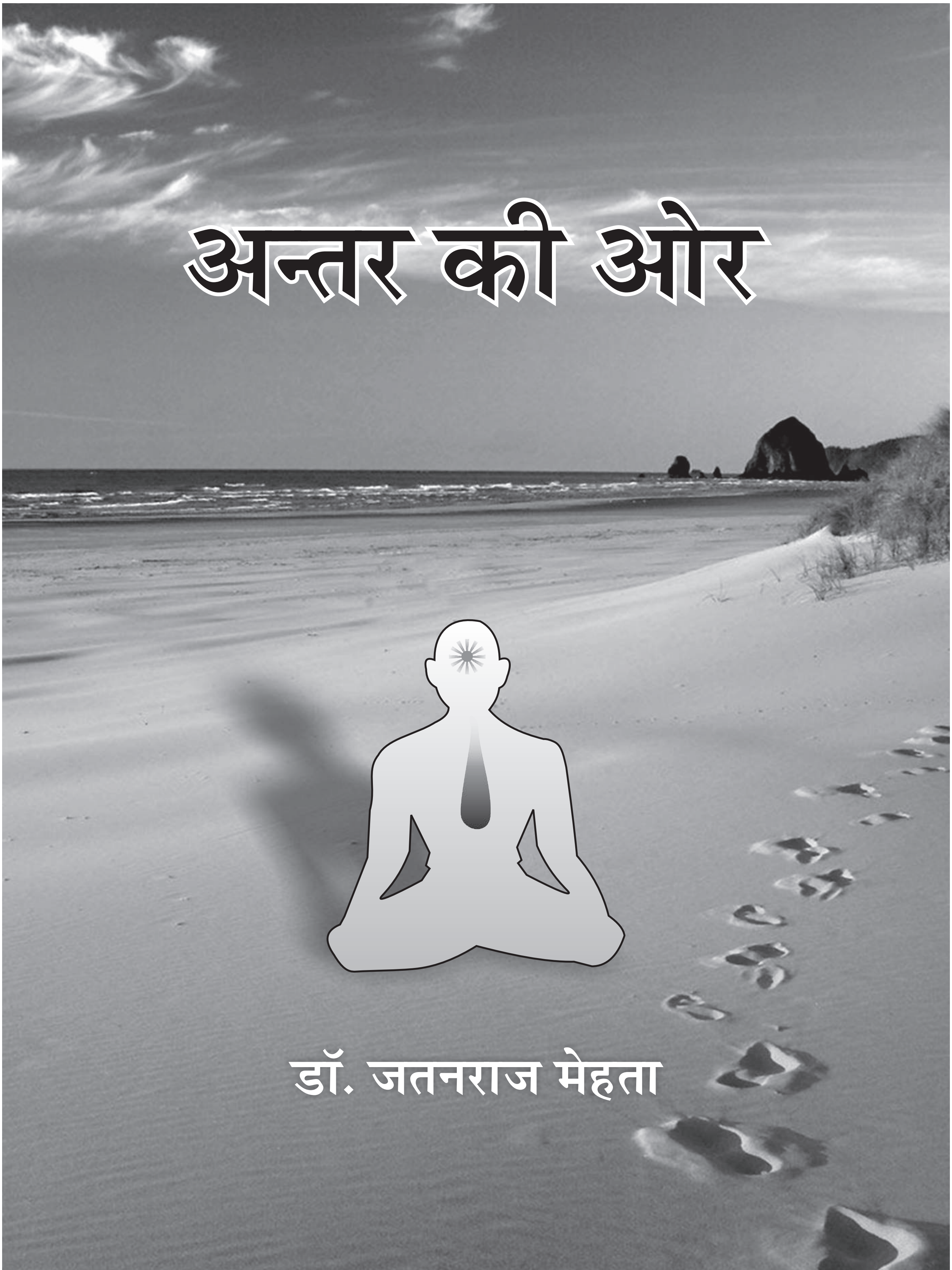

डॉ. जतनराज मेहता

प्राकृत भारती पुष्प - 266

अन्तर की ओर

लेखक
डॉ. जतनराज मेहता

प्राकृत भारती अकादमी जयपुर

प्रकाशक :

देवेन्द्रराज मेहता
संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक,
प्राकृत भारती अकादमी
१३-ए, मेन मालवीय नगर,
जयपुर-३०२०१७
दूरभाष : ०१४१-२५२४८२७

सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग
१३-ए, मेन मालवीय नगर,
जयपुर-३०२०१७
दूरभाष : ०१४१-२५२४८२७

मूल्य : १५०/- रूपये

लेखक
डॉ. जतनराज मेहता
प्रकाशन सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : जॉब ऑफसेट प्रिन्टर्स, अजमेर
दूरभाष : 09829472031

ANTAR KEE AUR/2013

समर्पण

मेरी हृद तंत्री के तारों को झंकृत कर

मुझे अनन्त आनन्द का अमृत, पान कराया

भारत की ऐसी विरल विभूति,

पूज्य गुरूदेव, आचार्य

श्री हस्तीमलजी म. सा. के

चरण कमलों में

श्रद्धा सहित

समर्पित

डा० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

Dr. L.M. Singhvi

Member, Permanent Court of Arbitration at the Hague
Formerly Member of Lok Sabha (1962-67) and Rajya Sabha (1998-2004)
Formerly India's High Commissioner in U.K., (1991-98)
Senior Advocate, Supreme Court of India
Formerly Chairman, High Level Committee on Indian Diaspora (2000-2004)

जब एक शुद्ध और प्रबुद्ध आत्मा की यात्रा
~~एक~~ आध्यात्मिक ~~[illegible]~~ अभिव्यक्ति का
साहित्य का सृजन करती है तो उसे
यात्रागीत भी कह सकते हैं,
कविता भी कह सकते हैं।
ये कृतियाँ श्री डॉ. जतनराज मेहता
की अध्यात्म डायरी हैं,
जिसमें यात्रा के अनिर्वचनीय
आनन्द का रूप, रेखा, बिम्ब, रंग
और शब्द दिए गए हैं। एक
अन्तरंग आध्यात्मिक यात्रा का
वृत्तान्त है यह, एक साक्षात्कार
का गीत है यह।

लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

प्रकाशकीय

आधुनिक हिन्दी परम्परा में रचित गद्य गीत अन्तर्हृदय की भाषा है।

श्री जतनराजजी मेहता ने अपनी वाग्धारा से स्वकीय भावना को प्रदर्शित किया है। आनन्दघन जैसे योगीराज ने – "ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो और न चाहूं रे कंत। रीझ्यो साहिब संग न परिहरे, भांगे सादि अनन्त।।" कह कर राम और रहीम के स्वरूप को एक माना है। इस पुस्तक में प्रकृति भाव प्रकट हुआ है। कवि का निष्काम आत्म-समर्पण है। पुस्तक में जीवन की अर्थहीनता और निस्सारता के भाव का सार्थक्यपूर्ण समावेश है। यह पुस्तक भक्ति, करुणा व सरसता से ओत-प्रोत है।

प्रस्तुत पुस्तक आज के विषमता बहुल वातावरण में पाठकों के लिए निःसंदेह शान्ति बहुल भावों का उद्रेक करने में उपयोगी सिद्ध होगी। इससे साहित्यिक सरसता का भी आनंद प्राप्त होगा और जीवन में प्रशान्त मनोदशा के साथ कार्यशील रहने का पथ भी प्राप्त होगा।

कविता में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए इस पुस्तक को प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है यह सभी काव्य-प्रेमियों को रस प्रदान करेगी।

डी.आर.मेहता
संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

आत्म-कथ्य

समय-समय पर प्रभु उपासना करते हुए
भारत भूमि के दर्शन का-
उसमें छिपे-
अनन्त ऐश्वर्य, श्री, वैभव का-
पान करते हुए-
प्रभु के गीत गाने का
प्रयास करता रहा हूँ।
उन्हीं स्वर्णिम अवसरों पर
प्रकृति के साहचर्य से अनन्त आनन्द 'श्री' का
आस्वादन करते हुए-
जो भाव अन्तर मन में
प्रवहमान होते रहे
उन्हें बाँधने का
एक लघु प्रयास किया है।

डॉ. जतनराज मेहता
सोनी चौक,
मेड़ताशहर, जिला-नागौर
(01590-220135)

भूमिका

श्री जतनराजजी मेहता द्वारा रचित 'अन्तर की ओर' नामक गद्य गीत संग्रह मुझे अचानक प्राप्त हुआ। इस संबंध में श्री जतनराजजी मेहता से फोन पर बात भी हुई। अपनी अस्वस्थता के कारण प्रारम्भ में मैं इसे पढ़ नहीं पाया, वह मेरा दुर्भाग्य था। लेकिन जब मैंने इसे धीरे-धीरे पढ़ना शुरु किया तो मुझे लगने लगा कि मैं एक अतीन्द्रिय संसार में संचरण कर रहा हूँ। यद्यपि यह हिन्दी भाषा है जो जतनराजजी मेहता जैसे अतीन्द्रिय सुख में खोये हुए व्यक्ति द्वारा ही लिखी जा सकती है।

गद्य गीत संग्रहों की हिन्दी परम्परा बीसवीं शताब्दी की है। नेमीचन्द जैन, रायकृष्ण दास, दिनेश नन्दिनी डालमिया, जनार्दनराय नागर, अम्बालाल जोशी ने इस परम्परा में सृजन किया है। इन सभी में अतीन्द्रिय सघनता स्वर अपना-अपना वैशिष्ट्य लिए हुए है। श्री जतनराजजी मेहता के कृतित्त्व में उन गद्य गीतों की समरसता का स्पष्ट निदर्शन परिलक्षित होता है।

विराट के दर्शन

हे मेरे प्रभु, हे मेरे विभु,
पेड़ की ऊँची टहनी पर चढ़ कर -
अन्तरिक्ष की ओर निहार रहा था- कि -
विराट् के दर्शन हो गये -
अन्तहीन श्री व सौन्दर्य -
मेरे हृदय में समा गये।
अनन्त की सीमा, अनन्त में विलीन होती
दिखाई दी-
अनन्त के कण-कण में निहित -
अनन्त सत्ता के दर्शन हुए
सृष्टि रूप अन्तरिक्ष में विराट के दर्शन करते हुए
अन्तर्हृदय के अन्तरिक्ष में -
प्रभु के दर्शन हुए -
मैं मुग्ध हो गया
श्री शोभा व सौन्दर्य में खो गया
विराट् की विराटता में समा गया।

श्री जतनराजजी मेहता मीरा की जन्म भूमि मेड़ता के निवासी हैं। यद्यपि वे मीरां बाई के लयात्मक गीतों की अवस्था में नहीं पहुँचे, लेकिन जिस तरह मीरां का हृदय अपने आराध्य के प्रिय के

विरह में व्याकुल रहता था, कुछ न्यून ही सही श्री जतनराजजी मेहता का हृदय अपने प्रभु के विरह में तरसता रहता है। कभी वे अनुभूत भी करते हैं कि उनके प्रिय उनके हृदय, मन, प्राण, और आत्मा के कण-कण में व्याप्त हो गये हैं। उन्हें विविध रूपों में अनुभूतियाँ होती है। अपने प्रभु के दर्शन कभी वे ऊषा के सौन्दर्य में विभोर होकर करते हैं, कभी वे मदनोत्सव में लीन हो जाते हैं।

हमारे यहाँ अब तक मदनोत्सव लौकिक अर्थ में ग्रहण किया गया है। परम्परा के विपरीत श्री जतनराजजी मेहता ने मदनोत्सव को अलौकिक अर्थ में प्रयुक्त किया है। लौकिक वासनाओं और अभीप्साओं से ऊपर उठकर जिस परम प्रिय प्रभु की वेदना श्री जतनराजजी के हृदय में है, उस विषय में वे बहुत भाव विह्वल होकर अभिव्यक्त होते हैं। संसार के महान् कवियों ने कण-कण में व्याप्त जिस परम चेतना के सौन्दर्य को अनुभूत किया है ऐसा ही श्री जतनराज जी मेहता ने 'अन्तर की ओर' शीर्ष पद्य गीत संग्रहों की परम्परा में, यह कृति निश्चय ही नये मापदण्ड स्थापित करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

डॉ. ताराप्रकाश जोशी
१२१, मंगलमार्ग
विश्वविद्यालय के सामने
टोडरमल स्मारक के पीछे
जयपुर।

प्रस्तावना

मानव की भावयात्रा जब सात्त्विक संस्कारपूर्ण उद्वेलन से अभिभूत होकर अभिव्यक्ति द्वारा प्राकट्य पाना चाहती है, प्राकट्य भी वैसा जिसमें सत्य एवं सौन्दर्य का परिवेश संयुक्त हो तब यह वाङ्मय के रूप में नि:सृत होती है। 'हितेन सहितं-सहितं, साहितस्य भाव: साहित्यम् - के अनुसार वह सर्वकल्याणकारिता लिए होती है। अतएव उसमें शिवत्व संयोजित हो जाता है। प्राक्तन साहित्य में विद्यमान 'सत्यं शिवं सुन्दरम्" का यही रहस्य है। साहित्य की काव्यशास्त्रीय भाषा में दो विधाएँ हैं- गद्यात्मक एवं पद्यात्मक।

रसस्निग्धता के कारण वे गद्यकाव्य और पद्यकाव्य की संज्ञाओं से भी अभिहित होती है। मानव जीवन एवं समस्त जगत् अपने आप में नैसर्गिक लयात्मकता लिए हुए है। यही कारण है कि ये दोनों ही विधाएँ तब सार्थक्य पाती है जब उनमें स्वाभाविक रूप में लयात्मकता संपुटित हो। छन्दशास्त्र उसी लयात्मकता का एक सुव्यवस्थित रूप है। पद्यात्मक रचनाएँ छन्द शास्त्रीय व्यवस्था के अनुरूप होती रही है। गद्यात्मक रचनाऐं शास्त्रीय लयात्मक सौष्ठव लिए रहती है। यद्यपि गद्य में गणों और मात्राओं का बंधन तो नहीं है, किन्तु सफलतापूर्वक लिख पाना बहुत दुष्कर माना गया है क्योंकि यहाँ पद्य की तरह पादपूर्त्यादि रूप अल्पप्रयोज्य शब्दों के रूप में कुछ भी क्षम्य नहीं होता।

इसी कारण 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' - इस प्राचीन उक्ति में गद्य को कवि के सामर्थ्य की कसौटी माना गया है।

उपर्युक्त विवेचन मुख्यत: संस्कृत की काव्यधारा के आधार पर है। हिन्दी में लौकिकता किंवा सार्वजनीनता, परिवर्तित वातावरण एवं चिन्तन के कारण साहित्यिक विधाओं में परिवर्तन या विकास होता गया। काव्यरसानुप्राणित गद्य के मुख्यत: दो रूप विकसित हुए-

प्रथम विस्तारपूर्ण एवं द्वितीय संक्षिप्त।

संक्षिप्त को ही गद्यगीत की संज्ञा से अभिहित किया गया। गद्य होते हुए भी उसे गीत कहे जाने के पीछे उसमें रही तन्यमयतामूलकभावसंज्ञेयता है। केवल वाद्य यंत्रों के आधार पर गाया जाने वाला ही गीत नहीं होता। हृदतन्त्री के तारों से झंकृत, भावमुद्राओं से परिष्कृत वाङ्मयात्मक अभिव्यक्ति भी गीत की परिभाषा से बाहर नहीं जाती।

साहित्यिक काल विभाजन के अनुसार हिन्दी के आधुनिक काल में जिसे गद्यकाल भी कहा जाता है, गद्यगीतात्मक विधा का विशेष विकास हुआ क्योंकि आज के अति व्यस्त लोक जीवन में व्यक्ति विशाल ग्रन्थों एवं काव्यों को पढ़ने का समय पा सके, उनसे रसास्वादन कर सके यह कम संभव है। अल्प समय में साहित्यिक रस का आनन्द ले सके इस हेतु अल्पतम शब्दावली में विरचित रचनाएँ ही लोकव्यावहारिक एवं उपादेय होती हैं।

'अन्तर की ओर' संज्ञक प्रस्तुत गद्यगीतात्मक कृति के रचनाकार श्री जतनराजजी मेहता एक ऐसे व्यक्ति है जिनमें धार्मिक संस्कार, दार्शनिक चिन्तन तथा समत्वमूलक मानवीय आदर्शों में अडिग आस्था के साथ-साथ व्यावहारिक कौशल भी है क्योंकि उनका जन्म एक व्यापारिक कुल में हुआ है जहाँ व्यावहारिक उपादेयता जीवन में क्षण-क्षण परिव्याप्त रहती है। यही कारण है कि उन्होंने उस विधा में अपने प्रातिम कौशल को अभिव्यक्ति प्रदान करने का सफल प्रयास किया है।

श्री मेहताजी यद्यपि एक गृहस्थ हैं किन्तु शैशव से ही उनमें आध्यात्म एवं योग के प्रति अभिरुचि रही है। यद्यपि वे वंश परंपरानुसार आर्हत समुदायानुवर्ति हैं किन्तु अर्हत् के महान् आदर्शों का अनुसरण करते हुए उन्हें अन्यत्र जहाँ कहीं भी जिस किसी भी परंपरा में सत् का वैशिष्ट्य दिखा उधर से उसे आकलित करने में सदा समुद्यत रहे। उसी कारण उनकी चिन्तन धारा में अद्वैत एवं द्वैत का ऐसा सामंजस्य है, जो जरा भी विसंगत नहीं लगता उन्होंने आर्हत् दर्शन सम्मत अनेकान्त विचारधारा का व्यापक अर्थ आत्मसात् करते हुए अपने भाव जगत् में जो उत्तमोत्तम तथ्य संचीर्ण किए, उन्हीं का यह प्रभाव है, उनकी दृष्टि में कोई पराया नहीं है। उनका 'स्व' उतना व्यापक है कि उसमें समस्त प्राणिजगत् का समावेश हो जाता है।

उन गद्यगीतों में उन्होंने अपने चिरन्तन योगाभ्यास चिन्तन, मनन एवं निदिध्यासनप्रसूत भावों को काव्यात्मक परिवेश में प्रस्तुत कर एक ऐसी काव्यसृष्टि की है, जो केवल कुछ देर के लिए मनोरंजन मात्र न होकर पाठकों को शांति के सरोवर में निमग्न होने का अवसर प्रदान करती है।

भाव वैषद्य के साथ-साथ शब्दों के सरल मृदुल प्रयोग करने में श्री मेहता जी को स्वभावतः नैपुण्य प्राप्त है, वह हर किसी में सुलभ नहीं होता। वे जब भी अन्तरतम में अपने आपको सन्निविष्ट कर चिन्तनमुद्रा में होते हैं तब शब्दावली के रूप में उनका अनुभूतिपुन्ज निःसृत होता है, वही काव्य का रूप ले लेता है।

मुझे यह व्यक्त करते हार्दिक प्रसन्नता होती है कि गत अर्द्धशताब्दी से मेरा उनके साथ साहित्यिक सौहार्द रहा है। अपने जीवन को साधना, ध्यान तथा साहित्यिक कृतित्त्व के रूप में निखारने का श्री मेहता को जो सुअवसर प्राप्त हो सका उसका एक कारण उनका सौभाग्यशाली होना है क्योंकि पितृकुल मातृकुल और अपने पुत्र-पौत्रादि परिवार का उन्हें वह सहयोग रहा, जिसमें वे तद्गत समस्याओं से उलझने में लगभग विमुक्त रहे।

यह रचना आज के विषमता बहुल वातावरण में पाठकों के लिए निःसंदेह शान्तिबहुल भावों का उद्रेक करने में उपयोगी सिद्ध होगी, जिससे न केवल उन्हें साहित्यिक सरसता का ही आनंद प्राप्त होगा वरन् अपने दैनंदिन जीवन में प्रशान्त मनोदशा के साथ कार्यशील रहने का पथ भी प्राप्त होगा।

सुधी पाठक इससे अधिकाधिक रूप में लाभान्वित हों, यही मेरी मंगल कामना है।

डॉ. छगनलाल शास्त्री
कैवल्य धाम,
सरदारशहर, जिला- चुरू (राजस्थान)

पुरोवाक्

जिस भूमि पर रणबाँकुरों ने जन्म लेकर इसकी रक्षा की है और अपने खून से इसका सिंचन किया है। आनन्दघन जैसे योगीराज ने जहाँ निवास कर अपनी उच्च भावना "ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो और न चाहूं रे कंत। रीझ्यो साहिब संग न परिहरे, भांगे सादि अनन्त", राम और रहीम के स्वरूप को एक मानते हुए अपनी अन्तर भावना को चिन्हित किया है और जहाँ इस धरती में उत्पन्न भक्तिमती मीराँ ने "मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई" उदात्त भावना को प्रकट करते हुए समस्त धरा को अनुगुंजित किया है। उस पवित्र एवं पावन भूमि को जिसे मेड़ता कहते हैं। संस्कृत में इसे ही मेदिनीतट कहा गया है। उसी भूमि के प्रसून जतनराजजी ने अपने नाम को सार्थक करते हुए जतन, यतन, यत्न, विवेकपूर्वक अपनी वाग्धारा से स्वकीय भावना को प्रदर्शित किया है।

भूमि का प्रभाव, पारिवारिक और धर्म संस्कारों का प्रभाव इनकी कृति में सर्वत्र लक्षित होता है। कवि ने करुणा भक्ति व सरसता से सिक्त होकर सर्वत्र अपनी कृति में हे प्रभो, हे विभो, अनन्त, और आनन्द शब्दों का ही प्रयोग किया है। जो सम्पूर्ण गीतों में उजागर होता है। अर्थात् लेखक किसी परम्परा विशेष से आबद्ध न होकर सर्वत्र चित्त को ही प्रधानता देता हुआ दृष्टिगोचर होता है। वह उस आनन्दघन से प्रार्थना करता हुआ कहता है :-

मेरे आनन्दघन विभो!

अन्दर छिपी अनन्त शक्ति को प्रकट करो-

तप से, तेज से, ओज से, प्रेम से, आनन्द से, प्रकाश से

अनन्त ज्योति से, अन्तर घट वरो (गीत नं. १६)

उस अनन्त की आराधना में कवि पाशविक वृत्तियों का दमन भी आवश्यक मानता है। वह लिखता है :-

अनन्त की आराधना में युग-युगों से

पृथ्वीपुत्र रत हैं -

समय-समय पर काल भैरवी बजती है

चित्त रूपी रण क्षेत्र में कर्म रूपी युद्ध छिड़ता है

पाशविक वृत्तियों का नाश होकर सात्त्विक वृत्तियों

की विजय होती है।

मानव की शाश्वत विजय (गीत नं. १७)

कहीं-कहीं आत्म देव के मिलन पर कवि खो जाता है, अपनी सत्ता खो देता है और उसी में विलीन हो जाता है। योगीराज आनन्दघन की तरह वह बोल उठता है :-

तेरे-मेरे का भेद अपगत हो गया,

स्व-पर का भेद प्रगट हो गया

भेद अभेद बन गया

द्वैत सब खो गया। (गीत नं. २७)

आधुनिक युग की महान कवयित्री श्री महादेवी वर्मा के गीत "पंथ होने दो अपरिचित" के अन्तर्गत 'मानलो वह मिलन एकाकी विरह में है दुकेला' कितना साम्य रखती है।

परम्परा से हटकर भक्तिमती मीराँ की तरह कवि वसन्त में राधा-कृष्ण के झूलने की तैयारी कर रहा है :-

मन के हिंडोले पर झूले पड़ गये हैं,

राधा और कृष्ण झूलने की तैयारी कर रहे हैं।

तन-मन में उल्लास छा गया है

कण-कण में चैतन्य समा गया है

वीणा का स्वर झंकृत हो उठा है

आनन्द गान मुखरित हो उठा है। (गीत नं. ४९)

प्रकृति की गोद में कवि "फूल का पराग मधु-रूप बन गया, जीवन का राग भी प्रभु रूप सज गया" एकत्व योग की कल्पना करता है। (गीत नं. २५) कहीं वह प्रकृति का गीत गा रहा है और कहीं पुरुषार्थ को सम्बल को अविभाज्य मानता है।

कवि ने नामानुरूप अपने भावों को कविता के माध्यम से प्रगट करने का यत्न किया है और उसमें वह सफल भी हुआ है।

लेखक की यह हार्दिक अभिलाषा थी की मैं इसका संशोधन करूँ और इस पर अपने विचार प्रगट करूँ। संशोधन कर कवि न होते हुए भी अपने विचारों को अभिव्यक्त करता हुआ डॉ. जतनराजजी मेहता को पुनः-पुनः साधुवाद देता हूँ। उन्होंने अपने अन्तर् आराध्य आत्मदेव को समक्ष रखते हुए जो कुछ अर्पण के रूप में लिखा है, वह उनकी साधना का ही फल है। बहुत-बहुत धन्यवाद।

साहित्य वाचस्पति महोपाध्याय विनयसागर

सम्मान्य निदेशक

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

एक अप्रतिम भावात्मक सृजन

हिन्दी साहित्य की आधुनिक विधाओं में एक विधा गद्यकाव्य की भी है। साहित्याचार्यों ने काव्य शास्त्रीय भाषा में पृथक् से कुछ नाम दिये हैं :- "वृत्तगन्धी-गद्य, गद्य-गीतिका, गद्य-गीत। इस विधा का हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक छोटा सा काल खण्ड रहा है, वह भी स्वाधीनता के पूर्व। इधर पिछले दशकों में - यह विधा सुप्त प्रायः सी रही है। बौद्धिकता के प्रवेग में जीवन की संवेदना, राग, लय, गीतात्मकता, रसमयता आदि का ह्रास स्वाभाविक है। किन्तु इस साहित्य विधा का अपना सौन्दर्य है, सौष्ठव है, माधुर्य है और कल्पनालोक का दिव्य वैभव भी। इसकी आत्मनिष्ठता, भावात्मकता और वैयक्तिता हृदय को सीधा स्पर्श करती है।

इस तीव्र भावात्मक विधा के प्रायः विस्मृति लोक में जाते इस अति बौद्धिक और तार्किक होते समय में श्री जतनराजजी मेहता कृत 'अन्तर की ओर' गद्य गीत संग्रह एक अप्रतिम और दिव्य आनंद की अनुभूति करता है। यह एक भक्तिभाव प्रवण आत्मा का आराधन निवेदन है। अपने आराध्य को जो ब्रह्माण्ड के कण-कण में व्याप्त और उपस्थित हैं और लेखक अत्यन्त भाव गद्-गद् होकर उसे अपने चतुर्दिक् अनुभव करता है। 'मेरे प्रभु, मेरे विभु' का अन्तर्नाद इस स्पंदन के प्रत्येक गद्यगीत की पंक्ति-पंक्ति और शब्द-शब्द में है। छायावादियों और रहस्यवादियों की पवित्र कवि-मानसिकता लिये श्री मेहता का भक्तिकाव्य इनमें सर्वत्र विद्यमान है। अपने आत्मदेव को यह कवि का निष्काम, निर्विशेष, निर्विकल्प आत्म समर्पण है, जिसमें उसके जागतिक जीवन की अर्थहीनता और निस्सारता का सार्थक्यपूर्ण समावेश है।

दक्षिणेश्वर से उत्तरेश्वर की ओर उसकी आत्मा का महाप्रस्थान इसका स्पष्ट संकेत हैं, स्पष्ट व्यंजना है।

श्री मेहता भावानुकूल भाषा के प्रयोग में प्रवीण है। उनके इन गद्य गीतों में एक भक्त, एक अध्यात्म पुरुष और एक विजयी कवि की आत्मा के दर्शन होते हैं। मैं श्री मेहता को इतनी भावात्मक रसकृति के लिये साधुवाद देता हूँ। विश्वास है, साहित्य जगत में इस कृति का स्वागत होगा।

रामप्रसाद दाधीच (पूर्व प्रोफेसर)
९३ नैवेद्य, नेहरू पार्क, जोधपुर-३४२००३

शुभकामना

राष्ट्रभाषा हिन्दी में विस्मृत होती गद्य गीत की परम्परा को श्री जतनराजजी मेहता ने अपने अन्तर्नाद 'अन्तर की ओर' कृति में देकर पुनर्जीवित एवं पुनः पुष्पित किया है। कवि के अन्तहीन नयन अनन्त की आराधना में व्याकुल रहते हुए भी जीवन की ऊषा सुन्दरी का साक्षात्कार करते हैं तथा आनन्द विभोर होकर अपनी जीवन नौका को पूरे प्राणपण से खेते हुए विराट् के दर्शन करते हैं। अनेक गीत-पंक्तियों में अपने प्रिय प्रभु के लिये विरह वेदना का मार्मिक चित्रण कर कवि ने अपरानुभूति को साकार किया है। प्रांजल भाषा, पवित्र भाव-सम्पदा तथा अद्वितीय शिल्प साधना के साथ कृति में एक ऐसा अमीरस का झरना प्रवाहित होता है, जिसके साथ पाठकवृन्द की जीवन वीणा के तार भी झंकृत हो उठते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक एवं यंत्र प्रधान युग में रहते हुए प्रभु के करुणा-कानन में सुप्रसन्न उठखेलियाँ करने वाला हमारा मनोमृग आज दुर्लभ हो गया है। ऐसे में रचनाकार ने विभुपद से अनन्त कृपा प्राप्त कर प्रबल पुरुषार्थ के बल पर अपने आत्मरथ को नन्दनवन का पथ प्रदान किया है, जो कवि के मन मंदिर में अनवरत जारी अनन्त एवं अखिलेश की साधना का स्वर्णिम सोपान है।

यह कृति प्रेम एवं सद्भाव से पूरित एक ऐसे भावलोक का सृजन करती है, जिसकी प्रासंगिकता आज के विभाव संकुल, संवेदनहीन होते कालखंड में द्विगुणित हो गई है। श्री मेहताजी का कवि-कर्म प्रशंसनीय ही नहीं, अभिनंदनीय भी है। जिसने इस असार संसार में रहते हुए भी अतीन्द्रिय सत्ता के साथ संलग्नता का सुख अपने पाठकों को प्रदान किया है। शुभाशंसा सहित।

नेमीचन्द्र जैन 'भावुक'
गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र,
गांधी भवन, जोधपुर-३४२०११

आभार

यह धरती, चाँद, तारे, नक्षत्र, मही हरे भरे वृक्ष, पेड़-पौधे, कलकल करती नदियां, धरती के पैर प्रक्षालन करता सागर, जिस पर बहती सुन्दर बयार, यह सब प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य है। हम इसके साहचर्य से आत्मरमण में आने का उपक्रम कर रहे हैं।

मेरे पिता श्री प्रसन्नचंदसा धाड़ीवाल एवं मामा श्री प्रेमराजसा मेहता जिनके यहाँ मैं दत्तक आया हूँ जिनकी गोदी में बैठकर बड़ा हुआ हूँ और जिनकी कृपा से, करूणा, दया, स्नेह, प्रेम, वात्सल्य आदि जीवन मूल्यों की प्राप्ति हुई है, उनका आभार शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता।

पूज्य गुरूदेव श्री हस्तीमलजी म.सा. जिनकी देव तुल्य अद्भुत कृपा को मैं जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकता। मेरे गुरू युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा., गुरूणी मैय्या श्री उमरावकुंवरजी म.सा. आदि सती वृन्द जिनकी प्रेरणा मेरे जीवन का सम्बल बनी।

मेरे गुरूवर्य सर्व श्री पुखराजजी व्यास, श्री हरिशचन्द्रजी लाटा आदि शिक्षक वृन्द जिन्होंने अक्षर ज्ञान के साथ बहुमूल्य शिक्षाएँ प्रदान की, वे मेरे हृदय में बसी है।

इस पुस्तक की पाण्डुलिपी तैयार करने में डॉ. नीतेशजी जैन, डॉ. नवलसिंहजी डूंगरवाल, डॉ. देवकिशनजी राजपुरोहित, डॉ. पाटनी जी आदि साहित्यकारों का मुझे पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। अन्य साहित्यकारों ने इस पुस्तक में अपनी समीक्षा आदि लिखी है, उनका मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरे सुपुत्र श्री नेमराज मेहता ने इस कृति के प्रकाशन में जो भावनात्मक सहयोग दिया है, वह सराहनीय है।

प्राकृत भारती के सभी कार्यकर्ताओं ने इस कृति के मुद्रण प्रकाशन में सहयोग दिया है, वे धन्यवाद के पात्र है।

अन्त में श्री डी.आर. मेहता साहब ने इसका प्रकाशन कराकर इस कृति को सर्व सुलभ पठनीय बनाया है अतः उन्हे धन्यवाद। इस कृति को तैयार करने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जिन-जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, उन सब का आभार।

पुनः उस अव्यक्त महाशक्ति को अनन्त प्रणाम्।

डॉ. जतनराज मेहता
मेड़ता सिटी
दूरभाष : 01590-220135

सम्मति

आज गद्य कविता काव्य-व्यवस्था में स्वीकृत हो चुकी है। यद्यपि छन्द, लय, तुक जैसे तमाम पारम्परिक उपादानों को छोड़ बिल्कुल निष्कवच होकर गद्य जैसे प्रभाहीन माध्यम से कविता लिखने का जोखिम कवियों ने उठाया। अब कविता छन्दों के मंच से उतर कर विस्तृत मैदानों की ओर बढ़ रही है। गद्य-कविता के वाक्य बिल्कुल गद्य जैसे होते हैं। पर गद्य-कविता किसी प्रकार की रियायत या छूट नहीं देती, बल्कि कवि को अधिक सजग और एकाग्र रहना पड़ता है। क्योंकि अब उसे किसी बाहरी सहारे या हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं रहती। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने १९३९ में गद्य-काव्य पर एक लेख लिखा, इससे पहले वे 'लिपिका' और 'शेषेर कविता' जैसी कविताएँ लिख चुके थे। उन्होंने उम्मीद की कि गद्य गीतों की जो अभी उपेक्षा हो रही है एक दिन ऐसा आएगा जब नये के स्वागत का पथ-प्रशस्त होगा। यह परम्परा आज कविता की पहचान बन गई है और श्री जतनराजजी मेहता का यह गद्य-गीत संग्रह इसी परम्परा का एक सशक्त प्रमाण है।

साधना जन्य आवेश के क्षणों में चिरन्तन साहित्य की सृष्टि होती है। मुझे यों लगता है कि ये गीत उन क्षणों में रचे गए हैं, जब गीतकार की देह, मन, बुद्धि एवं अहंकार का तिरोहण हो चुका है। शेष रही है केवल आत्मा... और आत्मा से जो ध्वनि निकलती है उसकी भाषा सामान्य भाषा से भिन्न समाधि भाषा होती है... और समाधि भाषा में जो कुछ निकलता, वह होता है - अन्तर्नाद, वह होता है - अनहद नाद! इन गीतों को पढ़कर कविवर जतनराजजी मेहता के जीवन की इसी स्थिति का आभास होता है। इन गद्य-गीतों को, इनमें निहित विचार-दर्शन एवं चिन्तन को अनुभूति में परिणित करते हुए संवेदनाओं से अभिसिंचित किया है। इसके लिए कविवर बधाई के पात्र हैं।

जबरनाथ पुरोहित

अनुक्रमणिका

१.	विराट के दर्शन	२१
२.	मुक्त गगन	२२
३.	गुरु वन्दना	२३
४.	नियति-नटी	२४
५.	आशा दीप	२५
६.	अनन्त छवि	२६
७.	मन रूपी धरती	२७
८.	कुहु की टेर	२८
९.	सत् चित् आनन्द	२९
१०.	जीवन नौका	३०
११.	विराट् विश्व	३१
१२.	प्रतिबिम्ब	३२
१३.	प्रणय-वेला	३३
१४.	जीवन की बगिया	३४
१५.	प्रेम का झरना	३५
१६.	समग्र चेतना	३६
१७.	शाश्वत विजय	३७
१८.	सरोवर की सैर	३८
१९.	ठगा सा रह गया	३९
२०.	बलिदान	४०
२१.	पदचाप	४१
२२.	अभिलाषा	४२
२३.	सत्य ही ईश्वर है	४३
२४.	प्रतिपालन	४४
२५.	उषा की बेला	४५
२६.	मृग	४६
२७.	अद्वैत	४७
२८.	आँख मिचौनी	४८
२९.	मदनोत्सव	४९
३०.	दक्षिणेश्वर से उत्तरेश्वर	५०
३१.	मन रूपी हरिण	५१
३२.	अनन्त के नाथ	५२
३३.	प्रेमास्पद स्वरूप	५३
३४.	आत्म रथ	५४
३५.	हम तुम एक हो गये	५५
३६.	कोयल की कूक	५६
३७.	अमी रस का निर्झर	५७
३८.	प्रेम में पागल	५८
३९.	नन्दन वन	५९
४०.	प्रभु का प्रतिबिम्ब	६०
४१.	प्रभु प्राप्ति	६१
४२.	सृष्टि	६२
४३.	अमृत ही अमृत	६३
४४.	अनन्त का स्वागत	६४
४५.	संयम सुन्दर है	६५
४६.	निर्वाण-पथ	६६
४७.	मेरा जीवन धन्य है	६७
४८.	ऋतु राज	६८
४९.	नया युग	६९
५०.	प्रबल पुरुषार्थ	७०

५१.	उषा सुन्दरी	७१
५२.	गीत गा	७२
५३.	अनन्त की आराधना	७३
५४.	आभास	७४
५५.	मत वाला	७५
५६.	आराम	७६
५७.	एकत्व योग	७७
५८.	पीताभ प्रभु	७८
५९.	माया पिशाचिनी	७९
६०.	चिन्तामणी	८०
६१.	साधना का कण्टक	८१
६२.	अप्रतिम छवि	८२
६३.	अनन्त कृपा	८३
६४.	आरती	८४
६५.	अनन्त की यात्रा	८५
६६.	लवलीन-नयन	८६
६७.	दामिनी	८७
६८.	अनहद-नाद	८८
६९.	अनन्त की खोज	८९
७०.	उठ आया ज्वार	९०
७१.	नुपुर - किंकण	९१
७२.	फूल का चुनाव	९२
७३.	जीवन देवी	९३
७४.	अहं विसर्जन	९४
७५.	सर्वत्र तूं हैं	९५

१. विराट के दर्शन

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
पेड़ की ऊँची टहनी पर चढ़कर
अन्तरिक्ष की ओर निहार रहा था कि
विराट के दर्शन हो गये
अन्तहीन श्री व सौन्दर्य
मेरे अन्तर में समा गये
अनन्त की सीमा, अनन्त में विलीन होती
दिखाई दी
अनन्त के कण-कण में निहित
अनन्त सत्ता के दर्शन हुए
सृष्टि रूपी अन्तरिक्ष में विराट के दर्शन करते हुए
अन्र्हदय के अन्तरिक्ष में-
प्रभु के दर्शन हुए-
मैं मुग्ध हो गया
श्री, शोभा व सौन्दर्य में खो गया
विराट की विराटता में समा गया।
मेरा अस्तित्त्व विला गया
अब मैं और मेरे का
कहीं अता-पता नहीं
सर्वत्र तेरा ही साम्राज्य है
मेरे अन्दर और बाहर
सर्वत्र तू ही विराजमान है
तेरी ही सार्वभौम सत्ता के दर्शन कर
मैं तुझ में एकाकार हो गया हूँ
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

२. मुक्त गगन

पूर्व की ओर से कुछ विहंगम-
मुक्त गगन में उड़ान भरते हुए
आ रहे हैं।
मेरा मन पूर्व की ओर उड़ान-
भरने को उत्सुक है
हृदय की समस्त कोमलताओं
मन की समस्त सरसताओं
और
आत्मा की समस्त उपलब्धियों के रस से
जीवन को अभिसिंचित कर
अनन्त आनन्द को प्राप्त कर लूँ

मुक्त गगन में चिड़ियों की उड़ान,
कितनी आनन्ददायी होती है
मेरी आत्मा की उड़ान भी-
कितनी आह्लादमयी होगी,
पूर्व की ओर, प्रकाश की ओर
मेरा आत्म-विहग कब से-
उड़ान भरने को
समुत्सुक है।
मेरे प्रभो! मेरे विभो!

३. गुरुवन्दना

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!
अनन्त की शक्तियों के स्पर्श से
धरती की अनन्त चेतना मुखरित हो उठी है –
झंकृत हो उठी है।

धरती के कण-कण में अनन्त की यह ध्वनि
अवनि और अम्बर को आत्म-चेतना के एक ही
धागे में पिरोकर एकमेक कर देती है।

क्षितिज के उस पार कल्पना का सूरज अपने
अनन्त ज्ञान रूपी किरणों से इस जगत पर अपना
उल्लास उतार रहा है, जिससे मही के प्रबुद्ध प्राणी
आत्म चेतना की दिव्य शक्तियों से दैदीप्यमान हो
रहे हैं।

उनमें से कुछेक आत्माएं उस अजर-अमर
विश्वात्मा से तादात्म्य स्थापित कर स्वयं को
अनन्त आनन्द में लीन कर देती हैं –

हे भगवन्
मुझे उन आत्मलीन महात्माओं के
श्रीचरणों की चाह है, जो तेरे उन्मुक्त आंगन में
मुझे प्रवेश दिला सके.....

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!

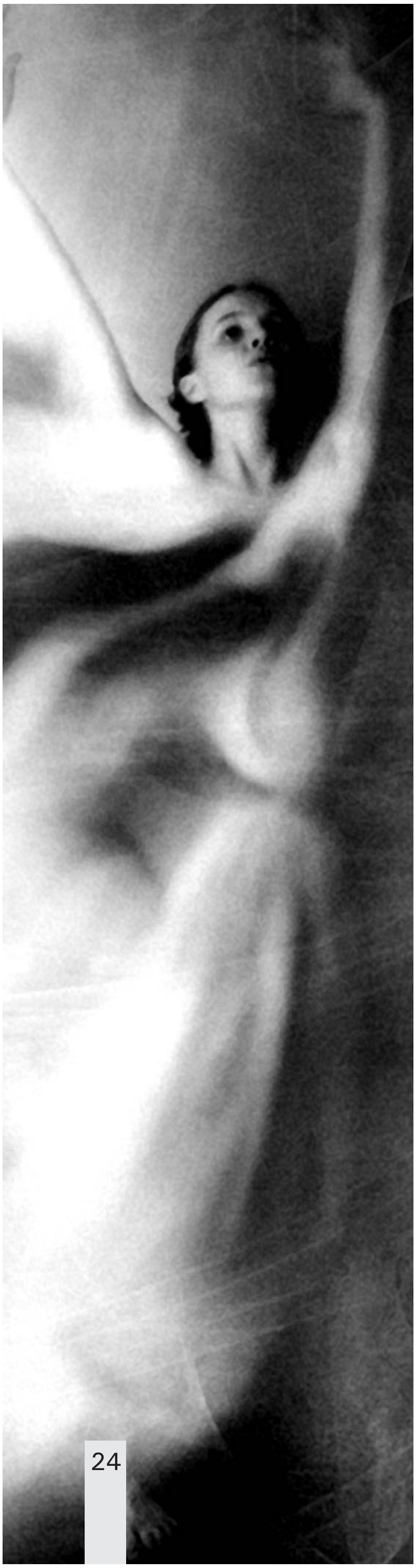

४. नियति-नटी

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!
आनन्द की इस उजागर वेला में
हृदतंत्री के तार झंकृत हो उठे हैं
सुरभि की स्वर लहरी पर
नियति नटी थिरक रही है
मेधा के अमृत कुण्ड पर
अनन्त की बूंदें बरस रही हैं
घनघोर गर्जना से तू जाग
और हुंकार भर दे
अपने परम पुरुषत्व को जगा दे
और उसमें अमृत्व भर दे
प्रिय! उषा की वेला निकट है
तनिक अपना श्रृंगार करले!
सदाबहार के फूलों को अंक में भर ले
झुककर प्रभु के दर्शन करले
यही निधि है
यही अमृत्व है
मेरे प्रियतम!
मुझे अखंड आनंद में
निवास करने दे
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

५. आशा दीप

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!

प्रकाश की एक क्षीण रेखा

आकाश से पृथ्वी पर

उतर आई

उसका नामकरण किया-आशा

सहस्त्रों अंधकारमय रजनियों को

उसी आशा ज्योति ने ज्योतिर्मय बना दिया

वर्तमान का यह क्षण सृजनशील मानव के हाथों में उपस्थित है,

इस आलोकमयी पुण्यवेला में

आशा के आलोक में

रश्मियों के प्रकाश में

अंधकार का आवरण दूर कर

सत्य का द्वार उद्घाटित कर दे

शुद्ध और शाश्वत

आत्म-ज्योति को प्रकट करदे

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

६. अनन्त छवि

हें मेरे प्रभो, हें मेरे विभो,
आज मैंने अपने अन्दर झांक कर देखा
हृदय पद्म पर परमात्मा विराजमान हैं
अनन्त छवि के दर्शन हुए।

यहीं तो अनन्त श्री, सौन्दर्य एवं
वैभव छिपा पड़ा हैं।
अमृत बरस रहा है
नाभि कमल सरस रहा हैं।

मन मयूर-हर्षित हो उठा हैं
नाच उठा, गा उठा हैं
प्रियतम के दर्शन करेंगे

हृदय बांसों उछलने लगा
प्रभु दर्शन को मचलने लगा
मैं प्रभु के सौन्दर्य में खो गया
प्रभु का था, प्रभु का हो गया।

हें मेरे प्रभो, हें मेरे विभो!

७. मन रूपी धरती

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!
मन रूपी धरती है
करुणा रूपी वर्षा होती है
धरती कोमल हो जाती है
अंकुर उग आते हैं
धर्म के भी
राग के भी
काम के भी
द्वेष के भी!
व्यर्थ के अंकुरों को
हटा देना पड़ता है।
रह जाते हैं सिर्फ
धर्म रूपी गुलाब के अंकुर
मेरे जीवन से भी
राग के
द्वेष के
काम के
क्रोध के
अंकुरों को हटाने के बाद रह जाते हैं
एक मात्र आत्मा की उर्जस्विता के अंकुर!
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

८. कुहु की टेर

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!
मेरे अन्तर में
अनन्तज्ञान/विकसित हो रहा है
प्रभु का अनन्त प्रकाश
प्रस्फुटित हो रहा है!
स्वच्छ शुद्ध सरित् प्रवाह
अठखेलियाँ कर रहा है,
पक्षी केलि कर रहे हैं।
विहंगम उड़ान भर रहे हैं
उपवन में कोयल
कुहु-कुहु की टेर लगाकर
पूछ रही है
प्रभु कहाँ हैं?
अनन्त हरित राशि
प्रभु के प्रति झूम-झूम कर
आस्था प्रगट कर रही है,
सूर्य का बिम्ब-प्रतिबिम्ब
अथाह जलराशि पर
गिरकर
ज्योतिर्मय आभा प्रकट कर रहा है
मेरे मन कानन में
प्रभु का बिम्ब प्रतिबिम्बित हो रहा है
हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!

९. सत् चित् आनन्द

अनन्त आनंद की ऊर्मियाँ गा रही हैं
प्रभु चरणों में अपने को लगा रही हैं
सत्-चित् आनंद हृदय में समा गया है
आनंद ही आनंद चहुँ ओर छा गया है

अनंत आनंद की बांसुरी बज उठी,
विपुल शक्तियाँ हृदय में सज उठी,
सूक्ष्म शक्तियों का अंबार है लगा,
प्रभु चरण शरण में मन है जगा,

ज्ञान सर्वत्र छा रहा है,
प्रभु चरणों को पा रहा है।
जगत और प्राण के
सृष्टि नवविहान के
तार सब खुल गये -
कषाय सब धुल गये -
अनंत आनंद का साम्राज्य छाया -
व्यष्टि और सृष्टि का भेद पाया

सर्वत्र-ज्ञान-ज्योति प्रकाशित हो रही -
ऊषा और आलोक की प्राप्ति हो रही -
मैं और मेरे का भेद मिट चला
तूं मेरा और मैं तेरा हो चला।

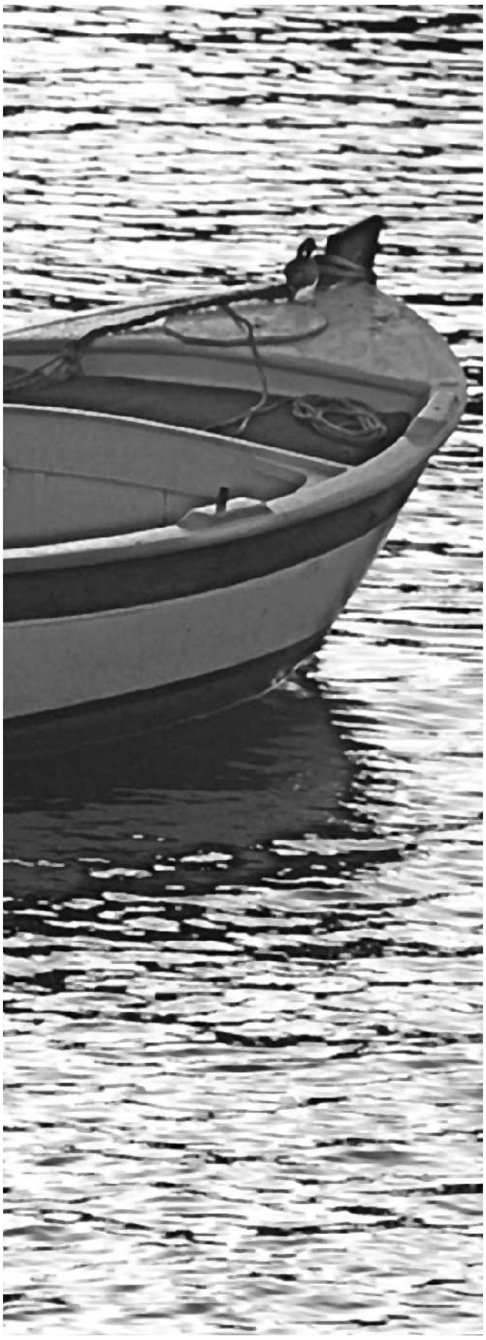

१०. जीवन नौका

हे मेरे भगवन्!
अनन्तानन्त गुण युक्त यह
भव्य आत्मा
जीवन रूपी नौका की स्वामी है
भवसागर के महासमुद्र में जीवन रूपी नौका,
बड़े आनन्द से तैर रही है-
मंजिलें पार कर रही है,
मानव जीवन और उस विराट विश्व के
स्वामी के बीच गहरा सम्बन्ध स्थापित हो गया है
मानव जीवन प्रभु की सुवास से प्रमुदित
हो उठा है-
हे मेरे भगवन्-
अनन्त की आराधना में लीन मेरा जीवन
आत्म-स्थिति में तल्लीन हो जाए,
यही एक अन्तर्भावना है-
मैं स्वयं आत्मलीन हूँ
हर्ष विभोर हूँ
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
मुझे अनन्त में लीन कर दो
- इस संसार की
सुध-बुध से अलीन कर दो
अपने में तल्लीन कर दो।
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

११. विराट विश्व

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
विराट् विश्व के कण-कण में
प्रभु का सौन्दर्य छिपा है
सर्वत्र प्रभु ही प्रभु विराजमान हैं
कण-कण में पत्ते-पत्ते में
प्रभु की सत्ता झलक रही है-
प्रभु विराट् विश्व के स्वामी
मेरे अन्तर्यामी, तेरी ही कृपा से
सागर तट से बंशी की आवाज आ रही है,
चहुँ ओर सागर तट की लहरें गर्जन कर रही हैं
दिशा विदिशा में माया से फुफकार भरती लहरें
तर्जन कर रही हैं
ऐसे में सागर तट से बंशी की सुरीली
मधुर ध्वनि तेरा ही तो संगीत है
जीवन के महासागर में-
माया की तरंगो के बीच
प्रभु की सुमधुर ध्वनि सुनाई दे जाती है।
यही मेरा सद्भाग्य है
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

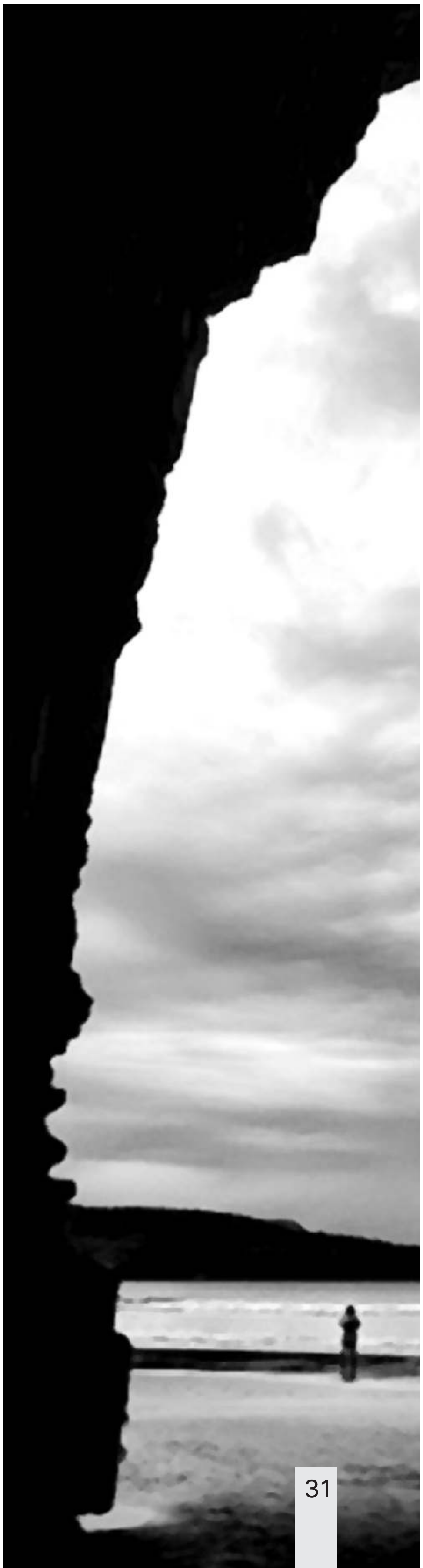

१२. प्रतिबिम्ब

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो,

ताराच्छादित गगन के

शुभ्र प्रकाश में

नीचे देखा तो

जलाशय कितना मनोहर लग रहा था

निर्मल व शान्त जल में द्वितीया का चन्द्र

अठखेलियाँ कर रहा था।

एकाएक नजर ऊपर उठी तो

चन्द्र कहीं दिखलाई नहीं दिया

झाड़ियों की ओट में उसने अपने आप को छुपा लिया।

मैं विस्मित होकर सोचने लगा

इसी प्रकार तो प्रभु अपने आप को छुपा कर रखते हैं

पर पवित्र आत्माएं अपने शान्त व पवित्र हृदय रूपी सरोवर में

प्रभु का प्रतिबिम्ब उतार ही लेते हैं

अतः हे मेरे आत्मन्

अपने हृदय रूपी सरोवर को पवित्र व शान्त रख,

जिससे कि स्वयं में ही प्रतिबिमबित,

प्रभु रूपी शुभ्रचन्द्र का

रसास्वादन किया जा सके।

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो।

१३. प्रणय-वेला

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
मेरे कण-कण में आनन्द छा रहा है-
एक कण से दूसरे कण में आनन्द की
सहस्त्र गुणी अभिवृद्धि हो रही है-
प्रत्येक कण में अनन्त आनन्द
छिपा हुआ है, जो प्रकट हो रहा है-
मैं अलौकिक आनन्द का पान कर रहा हूँ-
मेरे अन्तस्थ विभो,
तेरा अनन्त ज्ञान मेरे तिमिर अज्ञान को हर रहा है-
शुभ्र ज्योति, अनन्त आनन्द को भर रही है-
तू और मैं,
मैं और तू
इस पावन पुनीत प्रणय वेला में
एक हो रहे हैं
अपने आप को, एक-दूसरे में
खो रहे हैं
मेरा मैं समाप्त हो रहा है।
हे मेरे अन्तस्थ विभो!

१४. जीवन की बगिया

जीवन की बगिया में कर्म रूपी पुष्प खिले हैं
धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी फल लगे हैं
भाग्य की टहनी पर अर्थ और काम के
लाल-लाल फूल खिल उठे हैं -
दीन-दुनियाँ के तन-मन और प्राणों को
आकर्षित कर रहे हैं-
झूम-झूम कर कह रहे हैं-
इस समस्त विश्व पर हमारा ही साम्राज्य है
हे मेरे आत्म-देव!
कुछ और आगे बढ़ो
परम पुरुषार्थ की टहनी पर
दो दिव्य फूल महमहा रहे हैं
'धर्म' और 'मोक्ष'
श्वेत, शुभ्र और उज्ज्वल
अनन्त सुख, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान से
विभूषित-
मेरे आत्मदेव!
तू उन्हें छोड़ कर, इन्हें प्राप्त कर।

१५. प्रेम का झरना

मेरे हृदय में प्रेम झरता रहे
मेरा हृदय हर्ष से यों उछलता रहे
जैसे फूलों से सुगन्ध!
मेरे जीवन से आनन्द झरता रहे
जैसे हिमालय से गंगा का झरना
मेरे हृदय का कण-कण खुशी से गा उठे
नाच उठे
इस विश्व का कण-कण खुशी से भर जाय
विश्व के सभी प्राणी सुखों को प्राप्त करें -
आनन्द को प्राप्त करें
अजर अमर अविनाशी, परम सत्ता में,
परमात्म रूप को प्राप्त करें।
अजर-अमर-अखिलेश के
श्री चरणों में पावन प्रणाम!
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

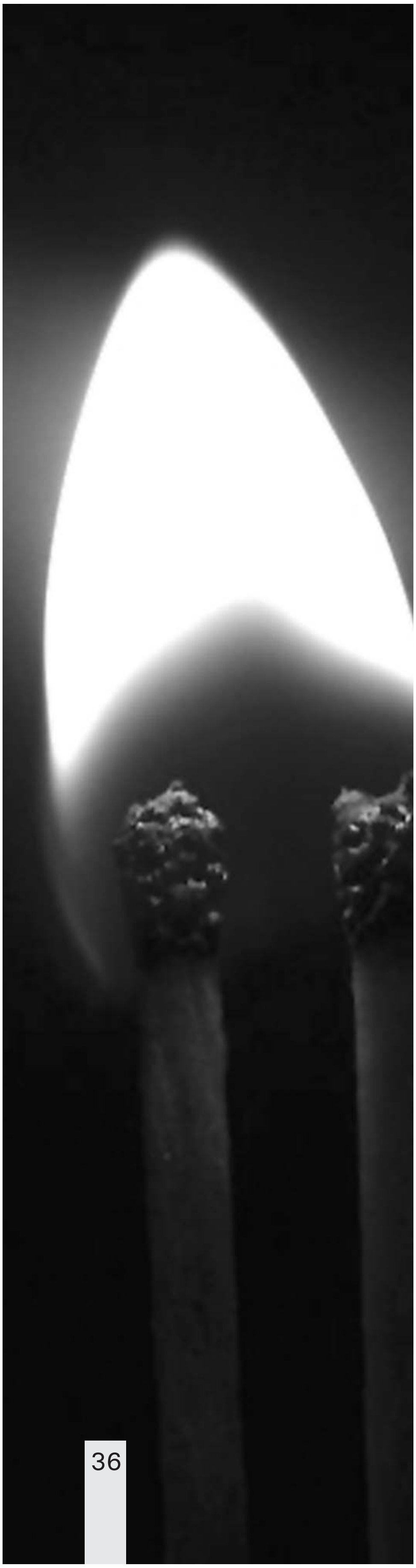

१६. समग्र चेतना

मेरे प्रभो! मेरे विभो!

मानव की समग्र चेतना अभिमुख हो उठी है

अनन्त के अनन्त रहस्यों के प्रकाशित होने का समय आ गया है।

मेरे आनन्दघन विभो! अन्दर छिपी अनन्तशक्ति को प्रकट करो।

तप से, तेज से, ओज से, प्रेम से, आनन्द से, प्रकाश से, अनन्त ज्योति से, अन्तर घट वरो

अनन्त की अनन्त सत्ता मेरे हृदय में स्थापित करो

मेरे नाथ-मेरे स्वामी-मेरे आनन्दघन प्रभो!

सम्पूर्ण विश्व के अन्तर्यामी

तेरी ही चरण माधुरी का गान करते

मेरा अन्तर, उज्ज्वल आलोक से भर गया है-

स्फूर्ति और आनन्द पैदा कर गया है

अब मैं तुझसे मिलकर भाव विभोर हूँ

मेरी सुधि लेने हर घड़ी आप आया करो

मुझे ज्ञान देकर ज्ञानानन्द से छकाया करो

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

१७. शाश्वत विजय

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

प्रभु ने हमें सृष्टि पर अनन्त की

आराधना करने भेजा है-

अनन्त की आराधना में युग-युगों से

पृथ्वीपुत्र रत हैं-

समय-समय पर काल भैरवी बजती है

चित्त रूपी रण क्षेत्र में कर्म रूपी युद्ध छिड़ता है

पाशविक वृत्तियों का नाश होकर सात्त्विक वृत्तियों

की विजय होती है।

मानव की शाश्वत विजय

यही विजय मानव जाति के इतिहास के पृष्ठों को बदलती है

दृश्य पर अदृश्य की विजय

दानवता पर मानवता की विजय

पशुता पर सात्त्विकता की विजय

यही युद्ध विश्व का सर्वोपरि युद्ध है

मेरे अन्तर में चलने वाले इस युद्ध में

शाश्वत शक्तियों की विजय दुन्दुभि सुनने को

मैं कब से आतुर हूँ

कान लगाये बैठा हूँ

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

१८. सरोवर की सैर

मेरे प्रभो! मेरे विभो! मेरे भगवन्!
युग-युगों से मानव सत्य की खोज कर रहा है
शाश्वत सत्य, प्रभु तेरा ही अंग है
सत्य पर ही यह सृष्टि टिकी हुई है
मेरे प्रभो, मेरे विभो
चारों ओर प्रकाश छा रहा है
सत्य रूपी उद्योत छन-छन कर आ रहा है
आज आनन्द रस का पान करेंगे।
प्रभुवर का गुणगान करेंगे।।
अभी अमृत की वर्षा होने वाली है
मान सरोवर की छटा निराली है
हंस उड़ रहे हैं मयूर केलि कर रहे हैं
वायु में मस्ती छाई हुई है
ऐसे में प्रभु हम तुम एक नाव पर बैठकर
सरोवर की सैर करने निकले हैं।

१९. ठगा सा रह गया

मेरे आनन्दघन प्रभो!
तेरे ही प्यार और प्रेम से यह जीवन चल रहा है।
अन्य कुछ भी करने की क्षमता मुझमें नहीं है
मैं तेरे प्यार में पागल हो उठा हूँ
कुछ भी करने की सुध-बुध नहीं है।
सभी कुछ तो तुझे समर्पित कर चुका हूँ
मेरा अस्तित्व अब समाप्त होता जा रहा है
अब मुझ में तू ही तू प्रकट हो रहा है-
हे मेरे देव! आनन्दघन प्रभो!
संध्या की वेला निकट है
मेरे हाथ-पैर जर्जरित हो चुके हैं
रात्रि की गहन नीरवता छा रही है
ऐसे में प्रभु तुम आए-
और मेरा हाथ थाम लिया
मुझ गिरते को बचा लिया
तू ही मेरा प्रकाश दीप है
अन्धकार में आलोक है
मैं तेरा हाथ पकड़ कर चल रहा हूँ
लो-
प्राची में लाली फूट पड़ी है
उषा गुलाबी परिधान पहन कर खड़ी है
मैं तेरी छवि को निहारता
ठगा सा खड़ा रह गया।

२०. बलिदान

आत्मा की ऊर्जस्विता के लिए,

बलिदान भी हो जाये

तो कोई हानि नहीं

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो! हे मेरे भगवन्!

अनन्त की अनन्त आराधना करते हुए

यदि कोई बलिदान भी करना पड़े

अर्थात्

संसार, सांसारिक सुख, पारिवारिक मोह, धन-दौलत

नाम, यश, कीर्ति एवं ईर्ष्या

इन सब की समाप्ति हेतु

बलिदान भी करना पड़े तो

खुशी खुशी

कर देना चाहिए।

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो! मेरे आनन्दघन!

२१. पदचाप

मेरे अनन्त घन आनन्द
चहुँ ओर शान्ति का नीरव वातावरण
छाया हुआ है
ऐसे में किसी के पदचाप गहरे और
गहरे होते चले जा रहे हैं-
मैं विरह के गीत गा रहा हूँ
हृदय विराट के दर्शन को आतुर है-
हृदय के कोने-कोने में प्रकाश व्याप्त हो चुका है।
मैं अनन्त प्रकाश के ज्योतिर्मय पुंज में
अपने को पवित्र कर रहा हूँ।

२२. अभिलाषा

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
एक तेरे स्पर्श मात्र से
तन-तम्बूर के तार झंकृत हो उठे हैं
मन-मयूर एकटक होकर तेरे
इंगित पर नाच रहा है,
मेरा कण-कण तेरे स्पर्श से
पुलकित हो रहा है,
तेरे इशारे की प्रतीक्षा कर रहा है
सब कुछ तुझे समर्पित कर रहा है
सर्वप्रथम मैं अपने अहं को समर्पित करता हूँ
जो मुझे अत्यधिक त्रास दे रहा है,
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
अनन्त की अनन्त साधना में,
मैं सब कुछ भूल रहा हूँ
मेरा 'मैं' समाप्त हो गया है
मेरे प्रभो! मेरे विभो!
मेरे क्षण-क्षण को तेरे चरणों का प्यार मिलता रहे,
मैं प्रतिक्षण आनन्द का पर्यवेक्षण कर सकूँ
यही एकमात्र आशा अभिलाषा है।
मेरे अनन्त विभो! मेरे अनन्त प्रभो!

२३. सत्य ही ईश्वर है

मेरे प्रभो! मेरे विभो!
सत्य ही ईश्वर है, सत्य ही प्रकाश है
सत्य ही शक्ति है-
सत्य ही भक्ति है,
मेरे प्रभो! मेरे विभो!
जिनके हृदय में सत्य का
श्वेत पुष्प हो, वे धन्य हैं
हृदय में उत्पन्न सत्य रूपी सुमन की
सौरभ दिग्दिगन्त में व्याप्त हो जाती है
मेरे प्रभो! मेरे विभो!
सत्य की आभा से हृदय
और अधिक प्रकाशमान हो उठा है
अन्धकार समाप्त हो गया है
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

२४. प्रतिपालन

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
अनन्त आनन्दघन परमात्मा
परम पिता परमेश्वर
हे मेरे भगवन्
मैं आपका ही तो हूँ-
सम्पूर्ण संसार में दृष्टि उठाकर देखता हूँ तो
सिवा आपके कुछ भी नहीं हैं-
इस जीवन में-
क्षण-क्षण आपने ही मेरी प्रतिपालना की है
अभी भी कर रहे हैं
मेरा सुदृढ़ विश्वास है-आगे भी करते रहेंगे-
अनन्त की आराधना में आपने जो
शक्ति प्रदान की है - इसके लिए मैं आपका ऋणी हूँ
धन्यवाद - कैसे दूँ?
आप तो अपने ही हैं-
और अपनों को धन्यवाद देने की
प्रथा नहीं है।
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

२५. उषा की बेला

हे प्रभो! हे विभो!
मेरे आनन्दघन, परमानन्द स्वरूप प्रभो
मेरे अन्तर्मन में आप विराजमान हैं,
आपके श्रीचरणों में मेरा ध्यान है,
मेरे आनन्दघन प्रभो–
उषा की बेला निकट है–
गहनतम अन्धकार में
उषा की किरणें फूटने लगी हैं–
प्राची में अरुणिमा छाने लगी है–
ज्योतिर्मय नक्षत्र का उदय हो रहा है
विहगावलि–गाने लगी है
शीघ्र ही भगवान् भास्कर
गगन मण्डल में आने वाले हैं
मेरे आनन्दघन प्रभो!
हृदय में आनन्द अठखेलियाँ कर रहा है
होठों से मुस्कान बिखेर रहा है–
आँखों से प्रेम बरस रहा है,
ललाट से पराग झर रहा है
केशों की लटों से श्रम का स्वेद बिन्दु गिर रहा है–
ऐसे में प्रभु आये
और एक झलक दिखाकर चले गये
नहीं, नहीं मेरे नाथ! यहाँ स्थिरवास करो
हे मेरे आनन्दघन प्रभो–

२६. मृग

मेरे मन, आनन्दघन
अनन्त आनन्द का शुभ्र प्रकाश
चहुँ ओर फैल रहा है,
मेरे मन में तू ही खेल रहा है।
अनन्त आनन्द की बांसुरी
नित बज रही है
प्रभु की मूर्ति घर आंगन में
सज रही है
अनन्त अखिलेश साधना का
स्वर चल रहा है-
मन मन्दिर में घनन् घन रव बज
रहा है
मेरे प्रभो! मेरे विभो!

२७. अद्वैत

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
तेरे-मेरे का भेद अपगत हो गया,
स्व पर का भेद प्रगट हो गया
भेद अभेद बन गया
द्वैत सब खो गया
अद्वैत का साम्राज्य छाया
हृदय का फिर राज्य आया
अब सूक्ष्म शक्तियाँ बोल रही हैं
शान्ति ही शान्ति चतुर्दिक् डोल रही है।
अनन्त का साम्राज्य छा गया
शान्ति का साम्राज्य आ गया
मेरे हृदय में आनन्द समा गया
तेरे रूप में-मैं विला गया
प्रभु तू और मैं एक हैं
विद्युत छटा की रेख हैं
तेरे ज्ञान की धारा बही
सुख-सम्पन्न हो गयी मही
मुझे छोड़कर जाना नहीं
भव-भवान्तर में फिर आना नहीं।।
हे मेरे आत्मदेव!

२८. आँख मिचौनी

प्रभु आ रहे हैं
मुझ में समा रहे हैं
प्रभु अवतरित हुए
धूप के रूप में
आम की छाँव में
प्रकृति की गोद में
हृदय की ओट में
प्रभु आँख-मिचौनी करने लगे
मुझे हृदय में भरने लगे
आनन्द है बढ़ रहा
पाप पुंज घट रहा
अनन्त के द्वार खुलने लगे
अमर्ष सब घुलने लगे
आनन्द का राज्य छा गया
हृदय का साम्राज्य आ गया

२९. मदनोत्सव

मेरे प्रभो! मेरे विभो!
तुझमें यह विराट विश्व समाया हुआ है
इस विराट विश्व का कण-कण-
तेरी ही चेतना से मुखरित हो उठा है
तेरी ही चेतना विराट विश्व में,
नव जीवन का संचार कर रही है
कण-कण में तेरी ही चेतना चमक रही है
जीवन के चिन्मय प्रांगण में
तेरी ही ज्योत्स्ना छा रही है,
मेरा जीवन तेरी सृष्टि के कण-कण से अमृत
की प्राप्ति कर रहा है-
आनन्द और अमीरस झर रहा है
प्रभु रूपी वायु के झोंकों ने जीवन की
समस्त मलिनता का प्रक्षालन कर दिया है,
मेरे आनन्दघन प्रभो
तेरी ही कृपा से
कण-कण में आनन्द और उल्लास छाया है
मैं तेरे साथ आनन्दोत्सव मनाने आया हूँ
इस मदनोत्सव में तू मेरे साथ है
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

३०. दक्षिणेश्वर से उत्तरेश्वर

मेरे प्रभो! मेरे विभो!
अब मैं तेरी सूक्ष्म शक्तियों सहित
दक्षिणेश्वर से उत्तरेश्वर को जा रहा हूँ
क्षण-क्षण प्रतिपल तू मेरे साथ है
इस यात्रा में मैंने,
धन कमाने को, सम्पर्क बनाने को,
संसार बढ़ाने को कम किया है
प्रभु उस रिक्तता को मैंने तुमसे भरा है।
अहा! कितना आनन्द है
तेरा सान्निध्य पाने में
ज्यों-ज्यों जगह खाली होती जा रही है
त्यों-त्यों तू उस जगह को
तेरे मधुर प्रकाश से भर रहा है
तेरे प्रति मेरी मधुर स्मृति सघन होती जा रही है
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

३१. मन रूपी हरिण

हे मेरे आत्म-देव!
तेरे करूणा-कानन में
मेरा मन रूपी हरिण विचरण कर रहा है
प्रसन्नता से
सघन-घन संसार रूपी
सघन वट वृक्ष के नीचे
चौकड़ी भर रहा है
ठण्डी छाँव तले लम्बे श्वास भर रहा है
अब विश्राम ले चुका,
आनन्द की अंगड़ाई ले रहा है
मेरे मन रूपी हरिण में -
प्रभो! तुम आ बसे हो
तभी तो वह तुम्हारे संगीत में मुग्ध होकर
लवलीन नयनों से पान कर रहा है
मेरे आत्मदेव!
तेरे करूण-कानन में
मेरा मन रूपी
हरिण विचर रहा है।

३२. अनन्त के नाथ

मेरे प्रभो! अनन्त के नाथ!
चिर सहचरी माया के बंधन
तेरी ही कृपा से काटकर रहूँगा
पुरुषार्थ की अनन्त सुरीली तान
तेरी ही कृपा से लगा कर रहूँगा
अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ के धनी
मेरे आत्म! ज्योतित आत्मदेव!
तू सर्व शक्तिमान है-
काट दे माया के बंधन
सर्वत्र तू है भगवन्
तेरे सिवा इस विश्व में और कुछ भी नहीं है
सर्वत्र तेरा ही साम्राज्य छा रहा है
चर-अचर विश्व
तेरे ही प्रकाश से ज्योतिर्मान हो रहा है
प्रकाश के आते ही जैसे अंधकार विलुप्त हो जाता है
वैसे ही तेरे प्रकट होते ही
माया विलुप्त हो जाती है।
हे मेरे आत्मदेव! हे अनन्त!

३३. प्रेमास्पद स्वरूप

मेरे प्रभो! मेरे विभो!
प्रभु का प्रेमास्पद स्वरूप मेरे अंग-प्रत्यंग से
प्रस्फुटित हो रहा है,
सचराचर विश्व का आनन्द,
सचराचर विश्व का अमृत
मेरे मन रूपी हृदय सरोवर से बह रहा है
तेरे अनन्त आनन्द के निर्झर
मन के कोने-कोने से फूट पड़े हैं-
मैं अपने रोम-रोम से सुधापान कर रहा हूँ
तेरे सच्चिदानन्द स्वरूप में झाँक कर
मेरा मन-मयूर नाच उठा है,
मेरा अंग-अंग खुशी से गा उठा है।
आपकी सृष्टि अत्यन्त सुन्दर है
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

३४. आत्म-रथ

मेरे जीवन धन,
अनन्त की अनन्त आराधना में रत
मेरा जीवन प्रभु ध्यान निरत
प्रभु के स्वरूप की
मनोहर छटा से अभिसिक्त होकर
मैं अपने को दिव्य अनुभव कर रहा हूँ
आनन्द की इस उजागर वेला में
अनन्त अनन्त सूर्यों की चमक लेकर
मेरी आत्मा अनन्त का पथ
प्रकाशित कर रही है
मेरा आत्म रूपी रथ अनन्त
के पथ पर दौड़ रहा है
अनन्त के स्पन्दनों से मेरा
तार-तार झंकृत हो उठा है
आनन्द से भर उठा है
प्रेम की अठखेलियाँ कर रहा है
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

३५. हम तुम एक हो गये

मेरे प्रभो, मेरे विभो,

इस विराट् विश्व में अनन्त की अनन्त चेतना

मुखरित हो उठी है।

कण-कण में आत्म चेतना की ज्योति जल उठी है।

अन्तरिक्ष में ऊषा की गुलाबी लाली छा रही है

सरोवर की लहरें गगन प्रतिबिम्ब से शोभायमान हैं।

ऐसे ही सुन्दर समय में

मेरे मन रूपी अरूणांचल में

तू धीरे से उदित हो रहा है

स्वर्णिम आभा किनारे पर दिखाई दे रही है

जिसकी अनन्त छटा से

समग्र गगन मण्डल के बादल

स्वर्णिम हो उठे हैं

सम्पूर्ण मही में उल्लास छा रहा है।

कण-कण तेरे स्वर्णाभ रंग से

पुलकित हो उठा है।

ऐसे में मेरे प्रभु मेरे प्रियतम तुम आये।

और हम तुम एक हो गये।

३६. कोयल की कूक

ध्यान की गहराईयों में,
पूजा की अंगड़ाईयों में,
कहीं, कोयल की कूक सुनाई दी।
एकाएक आत्मविहग उस ओर
उड़ान भर कर भागा,
प्रभु-पूजा के गायन का
अलौकिक स्वर सुनकर,
अनहद नाद का झरना फूट पड़ा
हे मेरे आत्मदेव!
तू सदैव आत्मपूजा में मगन रह।

३७. अमीरस का निर्झर

हे मेरे आत्मदेव-

अनन्त अमीरस का निर्झर बह रहा है

आपके श्रीचरण मेरे हृदय को स्वच्छ,

शुभ्र, स्फटिक सम पवित्र कर रहे हैं।

आपके श्रीचरण का प्रसाद पाकर

मेरा जीवन धन अनन्त गुना बढ़ गया है

चहुँ ओर आनन्द ही आनन्द बरस रहा है

तेरे श्रीचरणों की चमक से सारी सृष्टि की

द्युति अनन्त गुणी अभिवृद्धि को पा रही है

सर्वत्र इस सृष्टि में एक तेरी ही,

ज्योत्स्ना दृष्टिगोचर हो रही है,

मेरे जीवन-धन तुझे पाकर,

मैंने जीवन के समस्त स्वप्नों को साकार कर लिया है।

मेरे आत्मदेव-

जीवन वीणा के समस्त

तार झंकृत हो उठे हैं।

एक बार इन समस्त तारों को

तूं सम्हाल ले।

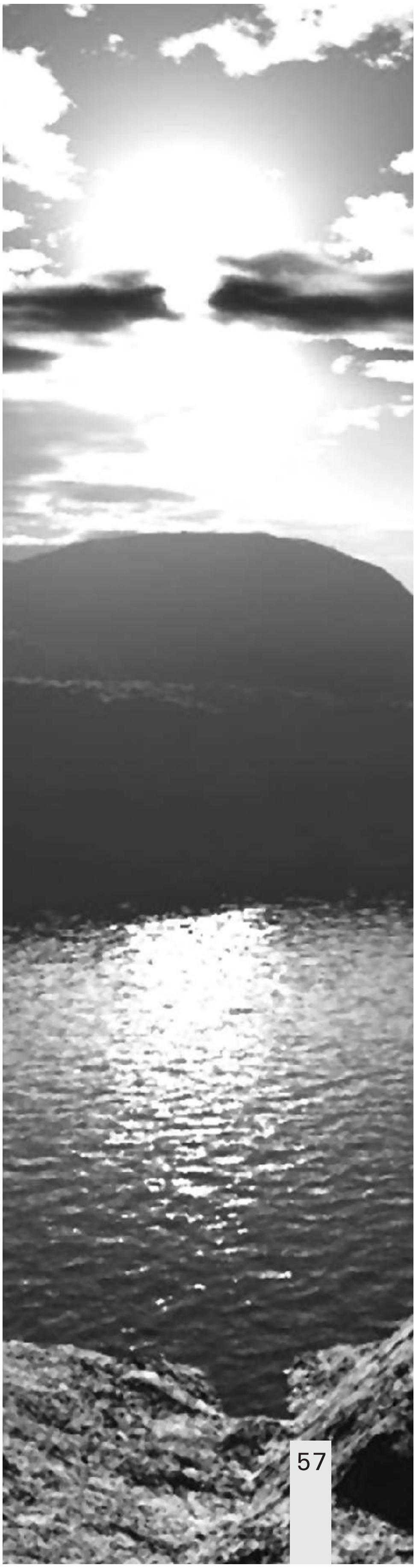

३८. प्रेम में पागल

मेरे प्रभो! मेरे विभो!
तेरे, एकमात्र तेरे, प्रेम में पागल बना मैं,
इस संसार के किसी भी काम का न रहा-
मुझे इसका दुःख नहीं है-
मुझे अत्यन्त हर्ष है कि
तेरे द्वार पर पहुँचकर मैं
अनन्त आनन्द की प्राप्ति कर रहा हूँ।
हे भगवन्-
अब तू अपने बन्द द्वार उन्मुक्त कर दे
जिससे मेरे अणु-अणु में आनन्द का
साम्राज्य स्थापित हो जाय
हे भगवन्- हे प्रभो- हे विभो
हे मेरे प्रियतम-मेरे आनन्दघन विभो।।

३९. नन्दनवन

मेरे मन!
मुझे ले चल
कहाँ?
नन्दनवन!
जहाँ
मेरे प्रभु सो रहे हैं
आनन्द में खो रहे हैं
सुरीली बांसुरी बज रही है
कामधेनु सज रही है
जो चाहे मांग ले
वासनाएँ त्याग दे
आज चैतन्य जगत का भोर हुआ
मेरा मन आत्म विभोर हुआ
अनन्त आरती बज रही
अप्सराएं सज रही
प्रभु दरबार का उत्सव सजा
अनंत का बाजा बजा-
कर्म सब टूट गये
वासनाओं से छूट गये
मेरे प्रभो! मुझे ज्ञान का दान दे!
तेरा ही हूँ, तेरा ही रहूँ, वरदान दे!

४०. प्रभु का प्रतिबिम्ब

मेरे प्रभो! मेरे विभो!
मेरे अनन्त गुण सम्पन्न- आत्मदेव
अनन्त की अनन्त सरिता मेरे अन्तर्
को प्रवहमान कर रही है
कल-कल करती धारा,
समस्त कषायों को धो रही है
प्रभु-चरणों से नि:सृत मन्दाकिनी
शान्त गति से बह रही है
सारस की पंक्तियाँ उड़ रही हैं
सारिकाएँ माधुर्य बिखेर रही हैं
कपोतों के जोड़े केलि मग्न हैं
झिलमिल करता प्रभु का प्रतिबिम्ब
हृदय के कण-कण को
प्रकाशित कर रहा है।
हे मेरे आत्मदेव!

४१. प्रभु प्राप्ति

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
अनन्तानन्त काल से यह आत्मा
प्रभु को पाने हेतु लालायित है
यह मानव जीवन रूपी अवसर मिला है
जिसमें पुरूषार्थ कर प्रभु की भक्ति कर ले।
मेरे मन-
अनन्तानन्त बाधाओं को पार कर
समस्त शक्तियों को प्रभु आराधना में लीन कर दे
तेरे समग्र कार्य स्वयमेव हो जायेंगे।
हे मेरे मन-
परिवार-धन-जन की चिन्ता छोड़
सर्वस्व प्रभु चरणों में समर्पित कर दे
प्रभु स्वयमेव परिवार की रक्षा करेंगे।
तुम पर उनका भार नहीं है।
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

४२. सृष्टि

प्रभु की यह सृष्टि कितनी सुन्दर है!
शीतल मन्द सुगन्धित समीर बह रही है
पेड़ों की टहनियाँ झूम-झूम कर कह रही हैं
कितनी सुन्दर है- यह सृष्टि!
तेरा जीवन इस अनुपम सृष्टि का सुन्दर अंग है
कण-कण से सौन्दर्य मुखरित हो रहा है
स्नेह एवं प्रेम का संगीत बह रहा है
सुमनों से सौरभ महक रहा है
ऐसे में प्रभु आये आशीर्वचन कह कर चले गये।।
जीवन उपवन का उद्यान फूलों और फलों से लदा रहे।
अन्तर के उपवन में अमीरस का स्त्रोत बहता रहे।।

४३. अमृत ही अमृत

हे मेरे आत्मदेव!
अनन्त अखण्ड अमृत
इस धरती पर चहुं ओर
बिखरा हुआ है
तू अपनी ज्ञान रूपी दृष्टि बढ़ा,
समस्त सृष्टि का अमृत
तुझ में भर जायेगा
तू अनन्त अमृत का पान कर
अमर हो जायेगा,
हे मेरे आत्मदेव, मेरे पियूष घट
अनन्त के अनहद नाद को
अपने अन्तर श्रवणों से सुन
अनन्त की अनन्तध्वनि चहुं ओर बज रही है
प्रभु मिलन को मेरी आत्मा सज रही है
अनन्त अखिलेश के श्री चरणों में
मेरे अनन्त प्रणाम मेरे अनन्त प्रणाम।।

४४. अनन्त का स्वागत

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!
तू मेरे अत्यन्त निकट है
पलक झपकते ही मैं,
तुझ रूप बन जाता हूँ,
तू ही मुझ में भासने लगता है
यह क्रिया क्षण भर में हो जाती है।
प्रभु आपका स्मरण ही अन्तर्चेतना को
ऊपर ले जा सकने में समर्थ है
मेरे प्रभो, मेरे विभो
उस अनन्त के स्वागत की अपने में
क्षण-क्षण तैयारी कर रहा हूँ
प्रभु किसी भी क्षण आ जाये तो
अपने में समा लूँ।

४५. संयम सुन्दर है

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
संयम सुन्दर है, अतीव सुन्दर है,
प्रभु की मिलन-स्थली है
अन्तरतम की गुहा में संयम रूपी सिंह सो रहा है
समस्त कर्म काँप रहे हैं
संसार रूपी जंगल के सभी प्राणी
संयम रूपी सिंह की दहाड़ से
कम्पायमान हो रहे हैं
सुध-बुध और चेतना खो रहे हैं
संयम अतीव सुन्दर है
प्रभु के प्रासाद की पगडण्डी है
जहाँ समस्त दुःख, समस्त अज्ञान
प्रभु के एक निमेष से
अन्तर्धान हो जाते हैं
हे मेरे मन!
संयम को हृदय में धारण कर
वहीं तो तुझे परम पिता परमात्मा के दर्शन होंगे
वहीं तुझे अनन्त अखिलेश आत्मा के
चिरन्तन रूप के दर्शन होंगे।
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

४६. निर्वाण-पथ

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
प्रभु की इस अनन्त सृष्टि में
समस्त जीव, चराचर प्राणी, अपने गन्तव्य-
परम सुख, अनन्त ज्योति, अखिलेश प्रभु,
की ओर आगे बढ़ रहे हैं-
सम्पूर्ण सृष्टि उस अजर-अमर अखिलेश के
श्रीचरणों में सिर झुका कर
अपने निर्वाण पथ पर
अग्रसर हो रही है।
मेरे प्रभो! मेरे विभो!
आप ही समस्त आत्माओं के
प्रकाश-दीप हो
ज्योति स्तम्भ हो
आनन्द-प्रदाता हो
ज्ञान-ज्योति-दाता हो
मेरे अखिलेश! तुमको कोटि-कोटि प्रणाम!

४७. मेरा जीवन धन्य है!

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
अनन्त की आराधना कर आज
जीवन धन्य है-
मनुष्य-जन्म को प्राप्त कर आज
जीवन धन्य है-
सन्तोष सुख, अपरिग्रह, अक्रोध की
प्राप्ति कर मेरा जीवन धन्य है-
शान्ति और आनन्द की प्राप्ति कर
आज जीवन धन्य है-
आनन्द की अठखेलियाँ करता आज
जीवन धन्य है-
हे भगवन्-
तू मेरे जीवन को तेरी आराधना में
लगा कर अमर कर दे-
मैं तेरे मनभावन मार्ग पर कब का
तैयार खड़ा हूँ-
मेरे प्रभो! मेरे विभो!

४८. ऋतुराज

अनन्त की अठखेलियाँ करता रहा ऋतुराज है,
बसन्त बन कर धरा पर उतर आया आज है।
चहुँ ओर मादकता छा रही
कुहू-कुहू कोयल गा रही।
अनन्त के ज्ञान से हृदय भर गया आज है,
चारों ओर विहान से उतरा जब ऋतुराज है।
प्रकृति पुरूष और चैतन्य का
भेद सारा मिट गया
अन्य भी भेद-विभेद अभेद हो गया
प्रभु के चरणों में अमर्ष सारा खो गया
अनन्त उजागर के चरणों में मैं सो गया
अनन्त का था, फिर अनन्त का हो गया।
भव-बंधन के कर्म कटने चाहिए
अग-जग पाप-मग सम्पूर्ण हटने चाहिए।

४९. नया-युग

नया युग आया है-
नयी चेतना लाया है
मन की बगिया के सभी फूल झूमने लगे हैं,
डाल-डाल और पत्ते-पत्ते में बसन्त छा गया है
मन के हिंडोले पर झूले पड़ गये हैं,
राधा और कृष्ण झूलने की तैयारी कर रहे हैं।
तन-मन में उल्लास छा गया
कण-कण में चैतन्य समा गया
वीणा का स्वर झंकृत हो उठा
आनन्द गान मुखरित हो उठा
ऐसे में प्रभु आये, झाँक कर देखा
मन की बगिया का कण-कण उल्लसित हो उठा
सभी पेड़-पौधे फूल-पत्तियाँ अगुवानी करने लगे
झूम-झूम कर सिर हिला कर यों कहने लगे।
प्रभु आने के बाद जाना नहीं
विरह अग्नि में जलाना नहीं
योग के बाद का वियोग सहा जाता नहीं
विरह का कारण समझ में आता नहीं।

५०. प्रबल पुरूषार्थ

मैं पैसे को बेचता हूँ,
मैं जिम्मेदारियों को बेचता हूँ,
मैं अपने सभी दु:खों को बेचता हूँ,
मैं अपने सभी झंझटों को बेचता हूँ,
मैं अपने पुरूषार्थ को भी बेचता हूँ,
अर्थात् मैं संसार के लिए पुरूषार्थ
लगाने की आवश्यकता नहीं समझता।
मैं व्यापारी हूँ
दु:खों को बेचता हूँ
सुखों को खरीदता हूँ
कंचन और कामिनी,
पैसा और परिवार
तो ढ़ेर सारे मिल जाते हैं
परन्तु
आत्म-सुख,
संयम-सुख,
चरित्र-सुख
धर्म-सुख और मोक्ष-सुख
ये सब अध्यवसाय, साधना और
प्रबल पुरूषार्थ से ही मिल पाते हैं।
इसलिये हे मेरे मन!
तू प्रबल पुरूषार्थ लगाकर
आत्मसुख की प्राप्ति कर।

५१. ऊषा सुन्दरी

ओ ऊषा सुन्दरी!

तेरे आगमन से धरती के कण-कण में उल्लास छा गया हैं

अंधकार का नाश होकर प्रकाश आ गया है-

जीवन की ऊषा सुन्दरी भी आज रमणीय परिधान

पहन कर उपस्थित हैं

पहले ही हास-परिहास में जीवन के समस्त दुःख,

समस्त बुराईयाँ, समस्त अंधकार समाप्त हो गये-

आनन्द, प्रेम-सौजन्यता का नव भानु उदित हुआ

प्रेम का गुलाबी रंग जीवन के कण-कण को आनन्दित कर गया

यही तो प्रेम का द्वार हैं- प्रभु का द्वार हैं-

अनन्त की आराधना का शंखनाद हैं।

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

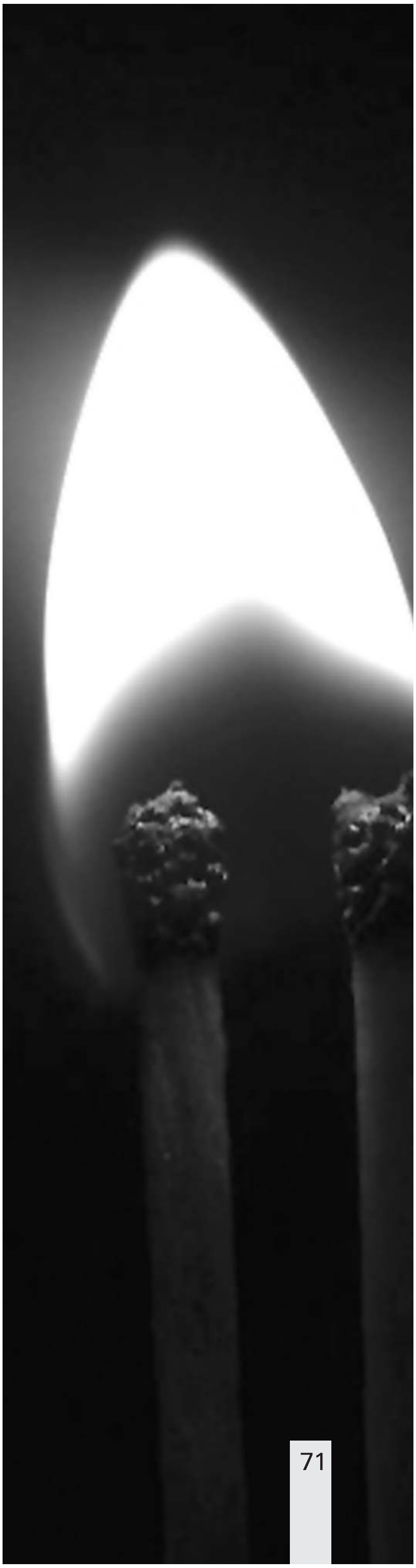

५२. गीत गा

प्रभु आ रहे हैं
हृदय में छा रहे हैं
घट में समा रहे हैं
प्रभु आ रहे हैं
अनन्त कीर्ति छा रही हैं
रोमावलियाँ गा रही हैं
रूप माधुरी नयनों में समा रही है
प्रभु आ रहे हैं,
मेरे मन गा,
प्रभु गीत गा,
बाँसुरी बजा,
प्रेम वाद्य सजा
मेरे मन गा,
हँस-हँस के गा,
हृदय हार सजा।

५३. अनन्त की आराधना

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
मैं अनन्त की आराधना को प्रस्तुत हूँ
सम्पूर्ण सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्तियों सहित
प्रभु की आराधना में,
अन्तर की साधना में
योग सब प्रभु की ओर बढ़े
आनन्द चतुर्दिक चढ़े
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!!
मेरे मन-मन्दिर में आनन्द छा रहा है
हृदय गगन में प्रेम रूपी सूर्य चमक रहा है
कण-कण में प्रभु का प्रेम शोभायमान है
सारी सृष्टि चेतन तत्त्व से ओतप्रोत है
मेरे प्रभो! मेरे विभो!
अनन्त की इस आराधना में
जीवन की इस साधना में
मेरा कण-कण लीन है
मैं प्रसन्न हूँ- आनन्दमय हूँ
हे मेरे प्रभु! हे मेरे विभो!
सम्पूर्ण शक्तियों सहित
मैं प्रभु की आराधना में लीन हूँ... तल्लीन हूँ
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

५४. आभास

मेरे भगवन मेरे आत्मन
अनन्त प्रभु की अनन्त ज्योति
मेरे अन्दर अवतरित हो रही है,
हे मेरे आत्म भगवन्
तेरे सनातन रूप परम विभु का दर्शन कर-
मैं आनन्द मगन हो रहा हूँ
आनन्द की ऊर्ध्व स्वर लहरियां मेरे हृदय से
इस प्रकार उठ रही है मानों
वातायनों से मधुर वायु-
शरद की सुहानी पूर्णिमा में हिलोरें ले रही हो
मेरे अनन्त घन आनन्द,
तेरे ही अनन्त आनन्द का
अमृत पान कर मैं अति आनन्दित हो रहा हूँ।
जब तू मेरे हृदय में होता है
मेरी गति ही कुछ और होती है
एक ऊर्ध्व स्वर चलता रहता है
प्रतिपल एक घंटी सुनाई देती है
जिससे अनहद नाद का स्वर गम्भीर से गम्भीरतर होता जाता है।
हे मेरे प्रभो! हे मेरे प्रभो!

५५. मतवाला

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

मेरे अनन्त आनन्दघन प्रभो,
तेरे रूप सौन्दर्य,
श्री सन्निधि का पान कर
मैं मतवाला हो उठा हूँ!

मेरे समस्त ताप, सन्ताप, त्रय ताप
नाश को प्राप्त हो गये हैं
आनन्द की ऊर्जस्विता मेरे हृदय के
सम्पूर्ण तापों का विनाश करती हुई-

अनन्त आनन्द की
रमणीय सृष्टि के सृजन में
लीन है।

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

५६. आराम

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!
मैं सो रहा था,
निश्चेष्ट, निष्पंद,
सिर्फ धीमे-धीमे, प्राण वायु का,
स्पंदन हो रहा था।
मैं सो रहा था
मेरा आत्म चेतन जग रहा था,
मैं आराम कर रहा था
मेरे घट में
'राम' आ रहा था
त्रिभुवन के स्वामी
मेरे नाथ, मेरे स्वामी
देखा तो धीरे-धीरे
घट में पधार चुके थे।
मैंने आसन बिछा दिया
मेरे स्वामी की भाव पूजा प्रारम्भ की
दूध से चरणों को धोया
चन्दन चढ़ाया
मेरे प्रभु के भावों की भावांजली अर्पित की।
सत्य-धर्म रूपी मीठे-मीठे फल
प्रभु को समर्पित किये।
वहाँ काम कैसा, क्रोध कैसा,
वहाँ तो सिर्फ सत्य, अहिंसा और धर्म
के सुवासित, सुगन्धित
उत्तम फल ही शेष रहते हैं।
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

५७. एकत्व योग

अनन्त गुण सम्पन्न मेरे आत्मदेव!
जीवन का सौरभ हवा के झोंकों में बह रहा था
जीवन रस से भरा-भरा,
फूल एक था खिला
सरसता से परिपूर्ण
फूल का पराग मधु रूप बन गया
जीवन का राग भी प्रभु रूप सज गया
जीवन की हर सांस में प्रेम गह-गहा उठा
सर्वत्र प्रेम छा गया, प्रभु में समा गया
अलि और कली में एकत्व योग बन गया
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
मस्त होकर झूम रहा हूँ,
तेरे प्रेम का पान कर मैं मस्त हो गया हूँ
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

५८. पीताभ प्रभु

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
मुझे अन्तरिक्ष की तैयारी करनी है
मेरा अन्तर मुझे अन्तरिक्ष की ओर बढ़ा रहा है
मन, प्राण और आत्मा को ऊपर चढ़ा रहा है
प्राणों के घर्षण से कर्म रूपी ईंधन जल रहा है।
काया के आकर्षण से निकलते-निकलते
समस्त ईंधन समाप्त हो चुका है।
मेरे प्रभो-
अब पाप-पुण्य रूपी ईंधन की कोई जरूरत नहीं है
प्रभु स्वयं ऊपर खींच रहे हैं,
सर्वत्र प्रकाश का राज्य है
आनन्द की बयारें बह रही है,
अलौकिक गरिमा छाई हुई है,
पीताभ प्रभु स्वयं उपस्थित है।
आत्मा और प्राण प्रभु चरणों में नमन करते हैं
यही आत्म-परमात्म संयोग सुख है।
आत्मपुंज घनीभूत प्रकाश पुंज में समा जाता है
अनन्त में आत्मपुंज विलीन हो जाता है।
मेरे प्रभो! मेरे विभो!

५९. माया-पिशाचिनी

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
अनन्त की अनन्त साधना करते हुए
प्राणों ने जीवन के स्पंदन का स्पर्श किया-
मानव जीवन को प्राप्त करते ही
अनन्त का घंटा बज उठा
अनहद नाद की स्वर लहरियाँ थिरकने लगी
आत्मानन्द का संगीत गूंज उठा
मानव जीवन को पाकर
प्रभु का वरण करेंगे
प्रभु के चरण-स्पर्श करेंगे
प्रभु में विलीन हो जायेंगे
सोच ही रहा था
कि माया रूपी पिशाचिनी ने आकर
गोद में भर लिया, तब से अब तक
माया की गोद में पड़ा हूँ
मेरे प्रभो! मेरे विभो!
मुझे माया के बंधन से विमुक्त कर
अपने श्रीचरणों में स्थान दे दे
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

६०. चिन्तामणी

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
तेरे दरबार में प्यार और प्रेम का संगीत बिकता है
प्रेम का सौदा हृदय के साथ होता है
जो प्रभु चरणों में सब कुछ समर्पित कर सकता है
वही प्रभु प्रेम का प्रसाद प्राप्त करता है
हे मेरे प्रभो, हे मेरे आत्मदेव!
प्रभु को प्राप्त करना है?
प्रभु प्राप्ति का सौदा बहुत सस्ता है।
इस मार्ग पर करना कुछ भी नहीं पड़ता है
सिर्फ अपने को समर्पित कर देना पड़ता है
शेष कार्य तो प्रभु स्वयं करते हैं
हे मेरे आत्मदेव!
इस सौदे को करलो
प्रभु रूपी माल खरीद लो
यह चिन्तामणी है-
इस माल की कीमत अनन्त गुणी है
लोगों को पता नहीं है
इसलिये विश्व हाट में-
चिन्तामणी का खरीददार नहीं है
विश्व व्यापार में, सब खरीदते हैं
लोभ को, तृष्णा को, मोह को,
राग को, द्वेष को-
जिससे प्राप्त होता है-
परिताप, व्यथा, दुःख, पीड़ा और संताप
हे मेरे प्रभो! हे मेरे आत्मदेव!
शीघ्रता कर, यह माल अनमोल है।
अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ, प्रभु चरणों में समर्पित करदे-
यह सौदा खरीद ले
मेरे प्रभो! मेरे विभो! मेरे आत्मदेव!!!

६१. साधना का कण्टक

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
हे मेरे आत्मन!
तू यश की कामना छोड़
छोटे-छोटे यश के वबंडर उड़कर
तेरे आत्म रूपी धन को उड़ा ले जाते हैं
आत्म-प्रवंचना, आत्म-छलना
आत्म-श्लाघा,
मान और अहंकार से दूर हट।
ये साधना के कण्टक हैं।
जो साधना-रूपी धन को
जुड़ने नहीं देते।
हे मेरे आत्मन्!
यश की भावना को छोड़,
अहं की भावना को छोड़,
कंकड़-पत्थर में मत उलझ।
संसार के मोहपाश में
आबद्ध मत हो!
हे मेरे आत्मन!
मुझे मेरे प्रियतम से
मिलने जाना है।
शीघ्रता कर
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

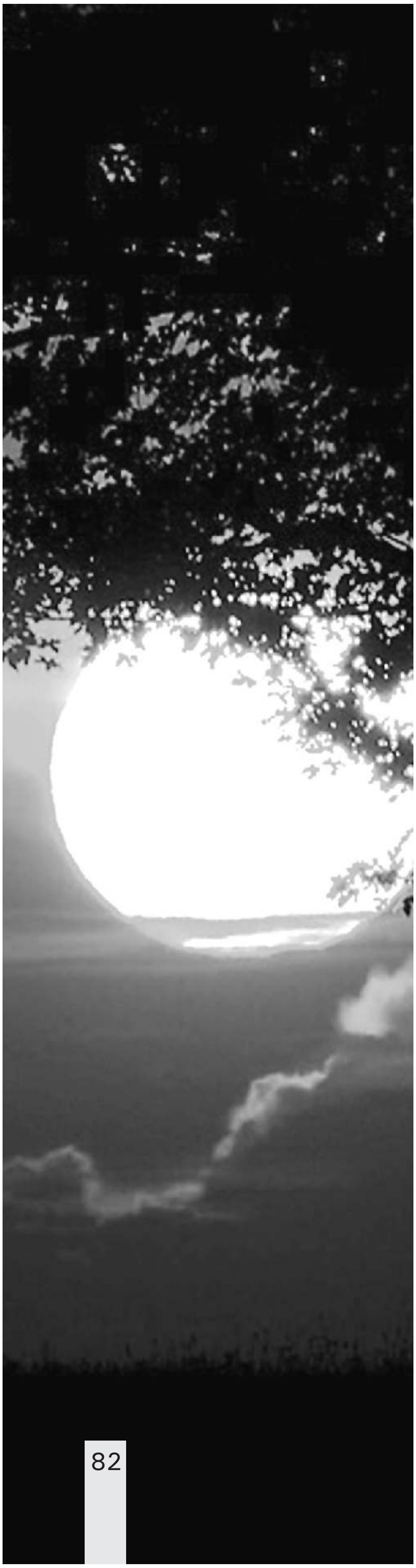

६२. अप्रतिम छवि

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
ऊपर सूरज सौन्दर्य बिखेर रहा था
नीचे हरित मखमली चादर-बिछी हुई थी।
मैं अल्मोड़ा की वादियों में प्रकृति का
सौन्दर्य निहार-रहा था
इन्द्रधनुषी छटा छाई हुई थी
सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ रहा था
एक अद्‌भुत सौन्दर्य की
सृष्टि हो रही थी
ऐसे में मेरे हृदय गगन में
प्रभु के सौन्दर्य की अप्रतिम छवि दिखाई दी।
मैंने उसे अपने हृदय के अन्तस्तल में समाहित कर लिया
पर न जाने कब,
वह अद्‌भुत छवि आँख मिचौनी की तरह
मेरे हृदय से अदृश्य हो गई
तब से उसके पुनरागमन की
प्रतीक्षा किये बैठा हूँ
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

६३. अनन्त कृपा

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
तेरी अनन्त कृपा से-
मेरे जीवन का कण-कण सौरभ से भर उठा है
दिग्दिगन्त में तेरी करूणा रूपी सौरभ महक उठी है
जल में, थल में, गगन में, समस्त भू मण्डल में
एक तेरी ही शक्तियाँ बह रही हैं
वायु तेरी महिमा के गीत गा रही है
नदी की लहरें संगीत दे रही हैं
गगन इन सबको प्रणाम कर रहा है
सूर्य तेरी शक्तियों को उजागर कर रहा है
हे मेरे प्रभो!

तेरी ही प्रशान्त विभावरी पर
मैं तन-मन प्राण से न्यौछावर हूँ
मैं समस्त शक्तियों सहित तेरे गुणगान को आतुर हूँ
मैं सम्पूर्ण शक्तियों सहित तेरे श्री चरणों की
छवि निहार रहा हूँ
मैं तेरे अनन्त सौन्दर्य के प्रति समर्पित हो गया हूँ
हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!
मैं सर्वात्मना समुपस्थित हूँ तेरे श्री चरणों में
तूने मुझे वचन दिया था
अब उसके निर्वाह का समय आ गया है
मेरे प्रभु अपना हृदय खोल कर
मुझे अपने सीने से लगा ले
अपने श्री चरणों में स्थान दे दे
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

६४. आरती

मेरे प्रभु की आरती है सज रही
चेतना में ज्ञान भेरी बज रही।
विषय और कषाय का अवसान आया
कर्म-करणी पर ज्ञान और विज्ञान छाया।
अनन्त की इस भाव भीनी अर्चना को
विश्व की इस शान्त शुभ सर्जना को।
मेरे अनन्त प्रणाम, मेरे अनन्त प्रणाम।
शान्ति की शुभ भावना को,
मेरे अनन्त प्रणाम!
मेरे हृदय गगन में आनन्द की बंशी बजी
विज्ञान भैरवी की सुरीली अप्सराएँ हैं सजी।
चढ़ेगी कर्म बादल पर ज्ञान और विज्ञान बनकर।
करेगी चूर कर्मों को आतम ज्ञान बनकर।

६५. अनन्त की यात्रा

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
अनन्त की यात्रा में यह देह बाह्य धर्मा है
मन, प्राण और आत्मा अन्तर धर्मा है
अन्तर में सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्तियाँ एकत्र होती है
अन्तर ही अन्तर यात्रा की तैयारी करता है
अन्तर ही आत्मा को उठने योग्य बनाता है
अन्तर ही उन घनीभूत कर्मों को जलाता है
हे मेरे प्रभो! हे मेरे अन्तर्यामिन्
कर्मों के बोझ से हल्का होकर मन-प्राण और आत्मा
पुण्य रूपी ईंधन को साथ लेकर
माया रूपी धरती के आकर्षण से बाहर निकल जाता है
और तब
अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख से
आत्मा एकाकार हो उठती है
चित्त चैतन्य में प्रभु के
दर्शन होते हैं
मुझे इस अनन्त सुख का
आनन्द लेने दे
हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो।

६६. लवलीन-नयन

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!
प्रभु की अनन्त सृष्टि, प्रभु की ज्ञान दृष्टि।
प्रभु की अनन्त वृष्टि, प्रभु की शान्त है सृष्टि।
मैं तेरी ही कृपा का पान कर
तेरी ही आराधना कर
तेरे समीप पहुँच जाऊँगा
मैं तेरे ही गीत गाकर तुझे ही पा जाऊँगा
तेरी ही कृपा से भवसागर पार कर
अनन्त में लीन हो जाऊँगा-
आपकी अनन्त सत्ता में लीन
मेरा अनन्त घटवासी मीन-
तेरी शान्त मूर्ति में समासीन
नयना तव चिन्तन लवलीन।

६७. दामिनी

हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!
तेरी ही स्वर लहरियाँ
मेरे नुपुरों की रूनझुन में बज रही हैं
तेरी ही नियति नटी
मेरे अन्तर आंगन में नृत्य कर रही है
वाद्य बज रहे हैं
नुपुरों की झंकार से
वातावरण मुखरित हो उठा है
मैं अपने अन्त:तल की
वीणा के तारों को
सप्तम स्वर में कस रहा हूँ।
वीणा के तार चंचल गति से गतिमान हो रहे हैं
नभो मंडल में गहन घटा छाई हुई है
बिजली चमक रही है
दामिनी दमक रही है
इन्द्रधनुष अपना लावण्य बिखेर रहा है
प्रभु के रूप लावण्य से नभो मंडल की
आभा अनन्त गुणी हो उठी है
ऐसे में तू उस परमात्मा के दर्शन करले
आनन्द से झोली भरले
इस आनन्द की तुलना में
संपूर्ण संसार का वैभव भी नगण्य है
हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो!

६८. अनहद-नाद

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
अनन्त की अनंत ज्योति
मेरे भीतर अवतरित हो रही है
तेरे ज्योतिर्मय रूप का
दर्शन कर- मैं आनन्दित हो उठा हूँ।
वातायनों से
शरत् की
सुहानी वायु
मेरे अंतर के
कोने-कोने को
सुवासित कर रही है
तेरे अनंत आनंद का पान कर
मैं आनंदित हो उठा हूँ
जब तू मेरे हृदय में होता है
अनहद नाद का स्वर
गंभीर से गंभीरतम होता जाता है
अनंत आनंद का अविरल झरना बहता रहता है
तेरे अनंत स्वरूप का दर्शन
प्रतिपल मेरे हृदय जगत में होता रहता है।
उठ और उस परम ज्योति के दर्शन करले।
अपने मन को अनंत आनंद से भर ले।
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

६९. अनन्त की खोज

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

हे मेरे आत्म भगवन्
जीवन के अन्तर धन
आनन्द की इन सुखद घड़ियों में
अभिभूत है मेरा मन!

अनन्त को खोजने निकला
साथ में लिया गुरू का सम्बल,
प्रकाश में, अन्धकार में,
जंगल में, बियावान में
सर्वत्र प्रभु का एक ही गुंजन।

शान्त, महाशान्त,
अन्तर शान्त, बाहर शान्त
पंचदेव शान्त, शान्त ही शान्त
सर्वत्र शान्त मेरे मन
अनन्त-आनन्द घन,
अखिलेश सदन!

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

७०. उठ आया ज्वार

ज्ञान के उस महासिन्धु में
उठ आया ज्वार
संभल गई पतवार
इतने में हो गया प्रकाश
महासिन्धु में उदित हुआ
रवि का आकार
अनन्त ज्ञान-अनन्त दर्शन
अनन्त आचार
अन्तर जगत की रेखाओं को कौंध
क्षण भर में कर्म सब रौंध
उदित हुआ जीवन का भानु
जीवन पथ पाथेय मिला
आत्म ज्ञान मणि फूल खिला
शान्त और अभिशान्त हृदय में
प्राणों का महाप्राणों से
गठ बन्धन अनगिन तारों से
हुआ है एकाकार
उठा आया है ज्वार.....
हे मेरे महाप्रभु.....

७१. नूपुर किंकण

हे मेरे स्वामिन्!
अनन्त अखिलेश परमात्म स्वरूप का
अनहद नाद टंकारा बज रहा है;
संपूर्ण ब्रह्मानन्द का निनाद
मेरे श्रोतेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जा रहा है।
मेरे अनन्त अनन्त भगवन।
तेरी ही कृपा के नूपुर किंकण
सर्वत्र सुनाई दे रहे है।
तेरा ही अनहद नाद गुंजायमान हो रहा है
मेरी सूक्ष्म इन्द्रियाँ कभी-कभी
इस अनहद नाद का रसास्वादन कर ही लेती है।
और तब -
संपूर्ण इन्द्रियाँ
तेरे चरण कमलों में नतमस्तक हो उठती है।
हो उठता है तेरा मेरा एकाकार
सृष्टि और सृष्टा का एकाकार
आत्म और परमात्म का एकाकार
हे मेरे मन आनन्द घन।

७२. फूल का चुनाव

मैं उपवन के शीतल मन्द समीर का आनन्द ले रहा था
युकोलिप्टिस के पेड़ों से भीनी-भीनी सुगन्ध आकर
तन-मन को सहला रही थी
बाँसों का एक हल्का सा
झुरमुट सामने सिर उठाए खड़ा था
मैं उद्यान की शोभा निहार रहा था
एकाएक एक सुन्दर फूल पर जाकर नजर अटक गई
फूल बड़ा मनोरम था
कोमल पंखुड़ियाँ-सुन्दर रंग से सजी हुई थीं
आकार-प्रकार भी सुन्दर था
किन्तु सौरभ विहीन था
नजर उठाकर देखा तो दूर
चमेली का झुरमुट खड़ा था
हरी साड़ी से लिपटी चमेली की बेल किसी
वृक्ष के सहारे खड़ी थी
सफेद-सफेद से फूल हवा के साथ अंगड़ाईयाँ ले रहे थे
न कोई रंग- न कोई आकार-प्रकार
फिर भी सौरभ का पराग उठ-उठ कर चारों
ओर के वातावरण को सुरभित कर रहा था,
सुवासित कर रहा था।
दूर एक गुलाब का फूल भी
मस्तक ऊँचा किये झूम रहा था
रंग भी, सुगन्ध भी, सौन्दर्य भी सभी गुण विद्यमान थे
मैं सोच रहा था-
अपनी जीवन बगिया में कौन से फूल उगाने हैं?

७३. जीवन देवी

मेरे प्रभो! मेरे विभो!
अनन्त की इस आराधना में
जीवन की मधुर बंशी बज रही है
अन्तर के हाथों
जीवन देवी सज रही है।
भाल पर प्रभु ध्यान रूपी
इन्दीवर शोभायमान हो रहा है
नासा पुट पर उड़ने वाले प्राण रूपी पंछी
अखिल ब्रह्माण्ड से तादात्म्य स्थापित कर रहे हैं
चन्द्र-चकोर की भांति चक्षु
विश्व-प्रेम का पान कर रहे हैं
प्रभु रूपी लालिमा युक्त होठ
चहुँ ओर मुस्कान बिखेर रहे हैं
आभरण युक्त कण्ठमाल
वक्षस्थलों की देखभाल में लीन हैं
उन्नत उरोज प्राणों की चढ़ती-उतरती
लहरों को देखने में मुग्ध हैं।
कटि पर संयम रूपी केसरी सिंह दहाड़ रहा है,
जिसकी गर्जन से कषाय रूपी कर्म कांप रहे हैं
जंघा से ब्रह्म तप रूपी प्रभा निकल रही है,
जिससे समस्त विश्व ज्योतिर्मय हो रहा है।
पिण्डलियों से प्रभु की शक्ति झलक रही है
जिनसे समस्त कार्य स्वयमेव होते जा रहे हैं,
जीवन देवी के चरण कमलों की
नख प्रभा से दिग्दिगन्त प्रकाशमान है
जीवन देवी को शत्-शत् नमन।

७४. अहं विसर्जन

मै सो रहा था
मेरा अहंकार जाग रहा था
मैं खर्राटे भरने लगा
अहंकार ने मुझ पर/ एक चादर ओढ़ा दी/ प्रमाद की
अंधकार–और गहरा गया।
अहंकार ने अपने मित्रों को बुलाया–
काम को
क्रोध को
माया को
लोभ को!
अब ठहठहा कर हंसने लगे,
खुशी से कुलांचे भरने लगे
अहंकार ने अपनी जाजम बिछाई
काम–क्रोध, माया–लोभ का जमघट छा गया।
रातभर उछल–कूद करते रहे!
प्रभात का समय आया
प्राची में उषा का साम्राज्य छाया
मंदिरों में घनन–घनन–घन घंटे बज उठे–
मेरे चित्त चैतन्य ने करवट ली–
प्रभु के कदमों की आहट हुई–
काम–क्रोध–माया–लोभ सब तिलमिलाकर भाग उठे–
शुद्ध चैतन्य मेरे हृदय में छा गया–
सूरज की लालिमा दिशाओं में प्रसार पाने लगी–
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

७५. सर्वत्र तूं है

हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!
इस सृष्टि में सर्वत्र तूं व्याप्त है-
मेरे अन्तर घट में तेरा ही साम्राज्य है
चाँद और सूरज तेरे इंगित पर चलते हैं
वायु तेरी ही आज्ञा से अठखेलियाँ करती है,
महासागर तेरी ही गरिमा का आलोडन करते हैं
तेरे बिना एक पत्ता भी हिलता नहीं
हे मेरे प्रभो, हे मेरे विभो
धन सम्पत्ति ऐश्वर्य वैभव सब अर्थहीन है
चाँद तारे और मही यही तेरी सम्पत्ति है
धीमी, मन्द सुगंधित वायु तेरा ही ऐश्वर्य है
नदियों का प्रवाह
कल-कल करते झरने
पेड़ पौधे
लताकुंज
और सघन झाड़ियाँ
यही तेरा वैभव है!
यही तेरा सौन्दर्य है!
प्रकृति के इस अद्‌भुत सौन्दर्य में
तेरे दर्शन करने दे
तेरी मुख रूपी छटा का पान करने दे
तेरी सृष्टि का गुणगान करने दे
हे मेरे प्रभो! हे मेरे विभो!

लेखक - परिचय

डॉ. जतनराज मेहता का जन्म १ जनवरी सन् १९३३ को मध्यप्रदेश के ग्वालियर नगर में श्री प्रसन्नचन्द जी सा. धारीवाल के घर हुआ। जहाँ से आप अपने ननिहाल मीरा की नगरी मेड़ताशहर में चौधरी श्री प्रेमराज जी सा. मेहता के यहाँ दत्तक आये।

पेशे से व्यवसायी श्री मेहता की किशोरवय से ही साहित्य सृजन में विशेष रूचि रही है। यौवनावस्था से ही आपका जीवन साधनाशील रहा तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में आपकी अभिरूचि विशेष रही। फलत: आप युवावस्था में ही अनेकों धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध हो गये। आपने अनेकों कवि सम्मेलन एवं साहित्यिक समारोहों का सफल आयोजन भी किया है। आप एक चिन्तनशील लेखक होने के साथ साधनाशील साधक भी है। आप सदैव प्रसन्न मुद्रा में रहते हैं। आपने अनेकों धार्मिक संस्थाओं के सफल संचालन में अपनी अहम् भूमिका निभाई है।

मेड़ता का इतिहास, आशीर्वाद, योगीराज आनन्दघन आदि पुस्तकों का लेखन आपके साहित्य की विविध विधाओं में रचना धर्मिता का प्रमाण है। आपने लगभग दो दशक तक आगम प्रकाशन समिति ब्यावर के महामन्त्री एवं सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर के सहमन्त्री पद पर रहकर साहित्यिक जगत की महती सेवाएँ की है। आध्यात्मिक, साहित्यिक भावों से परिपूर्ण प्रस्तुत कृति 'अन्तर की ओर' आपके हाथों में है।

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर
सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग
13 ए, गुरुनानक पथ, मेन मालवीय नगर, जयपुर
ISBN No. - 978-81-89698-71-3